शहतूती रेशम उत्पादन का विकास नई प्रौद्योगिकियों के साथ

राजभाषा तकनीकी कार्यशाला

6 फरवरी 2013

केंद्रीय रेशम उत्पादन अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान
केंद्रीय रेशम बोर्ड
वस्त्र मंत्रालय - भारत सरकार
मैसूर - 570008

शहतूती रेशम उत्पादन का विकास नई प्रौद्योगिकियों के साथ

राजभाषा तकनीकी कार्यशाला

6 फरवरी 2013

केंद्रीय रेशम उत्पादन अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान
केंद्रीय रेशम बोर्ड
वस्त्र मंत्रालय - भारत सरकार
मैसूर - 570008

जनवरी 2013
हिन्दी : 180 प्रतियां

प्रकाशक :

डॉ. एस. एम. एच. क़ादरी,
निदेशक,
केंद्रीय रेशम उत्पादन अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान,
(केंद्रीय रेशम बोर्ड-वस्त्र मंत्रालय-भारत सरकार),
मैसूर - 570 008.

संपादक मंडल :

डॉ. सतीश वर्मा
डॉ. एस. डी. शर्मा
डॉ. ब. जयरामुलु
डॉ. डी. डी. शर्मा
श्रीमती वी. जयश्री

संकलनकर्ता :

श्रीमती के. शचि
श्री अनिल कुमार जायसवाल

मुद्रण सहायता :

श्री भीमसेन एस. पप्पू

विषय-सूची

1	दक्षिण भारत में रेशम उत्पादन - कल आज और कल	एस.एम.एच. क़ादरी एवं एस. निर्मल कुमार	1
2	रेशम उत्पादन के लिए शहतूत की प्रमुख उपजातियाँ	एम.के. पी अरस एवं एस.एम.एच. क़ादरी	7
3	शहतूत संवर्धन में नवीन प्रौद्योगिकियों का योगदान	आर.एस. कटियार एवं विनोद कुमार यादव	9
4	शहतूत के रोग एवं उनका नियंत्रण	दिनेश दत्त शर्मा	13
5	शहतूत एवं रेशमकीट के प्रमुख पीड़क एवं उनका नियंत्रण	विनोद कुमार, जे.बी. नरेंद्र कुमार एवं बी.टी. श्रीनिवासा	22
6	रेशमकीट पालन में वर्तमान समस्याएँ एवं चुनौतियाँ	कणिका त्रिवेदी एवं विनीत कुमार	32
7	रेशमकीट के रोग एवं उनका एकीकृत प्रबंधन	एस.डी. शर्मा, बालवेंकट सुब्बय्या, ए.आर. नरसिंह नायक एवं के. चंद्रशेखरन	37
8	शहतूत रेशम उत्पादन में यंत्रीकरण - आवश्यकता एवं संभावनाएँ	सतीश वर्मा	42
9	रेशम उत्पादन प्रशिक्षण एवं विस्तारण प्रबंधन	एस.डी. शर्मा एवं जी.एस. विंध्या	47

दक्षिण भारत में रेशम उत्पादन - कल आज और कल

एस.एम.एच.क़ादरी एवं एस. निर्मल कुमार
केंद्रीय रेशम उत्पादन अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, मैसूर

रेशम भारतीयों के जीवन और संस्कृति के साथ ओतप्रोत है । रेशम उत्पादन में और रेशम व्यापार में भारत का 15वीं सदी से लेकर समृद्ध और सामासिक इतिहास है । स्वतंत्रता के समय देश में रेशम उत्पादन परिदृश्य कम उत्पादक स्थानीय शहतूत उपजातियों और पारंपरिक रेशमकीट प्रजातियों से अभिलक्षित था । उष्णकटिबंधीय देशों से अनुकरण की गई प्रौद्योगिकियों का देश में रेशम उत्पादन विकास के लिए सामान्यतः इस्तेमाल किया जाता था, इसलिए वांछनीय परिणाम नहीं मिलते थे । भारत स्थित उष्णकटिबंधीय स्थितियों के लिए समुचित रेशम उत्पादन प्रौद्योगिकियाँ विकसित करने की आवश्यकता को महसूस करते हुए राज्य रेशम उत्पादन अनुसंधान संस्थान को लेकर वर्ष 1961 में चन्नपट्टणा में केंद्रीय रेशम उत्पादन अनुसंधान संस्थान की स्थापना की गई । उसके बाद वर्ष 1963 में इस संस्थान को मैसूर में स्थानांतरित किया गया और अखिल भारतीय रेशम उत्पादन प्रशिक्षण संस्थान, मैसूर से विलीन होकर वर्ष 1965 में केंद्रीय रेशम उत्पादन अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान बन गया । कुछ ही वर्षों में यह संस्थान पूर्ण सुसज्जित उत्कृष्ट केंद्र के रूप में विकसित हुआ और दक्षिण पूर्व एशिया में उष्णकटिबंधीय रेशम उत्पादन के लिए अंतर्राष्ट्रीय रूप में प्रमुख अनुसंधान संस्थान बन गया । इसने रेशम उत्पादकता एवं गुणवत्ता बढ़ाने हेतु उल्लेखनीय समर्थन प्रदान करते हुए कृषकों के लिए अधिक आय की प्राप्ति सुनिश्चित की ।

भारत में रेशम उत्पादन ग्रामीण लोगों को सहायता देने वाला दीर्घकालीन कृषि आधारित आर्थिक उद्यम है । हालांकि बढ़ते देशी बाजार में भारतीय रेशम उद्योग का बहुत बड़ा स्थान है । फिर भी संप्रति डालर के रूप में निर्यात अधिक बढ़ने की प्रवृत्ति दर्शाता है । तथापि भारतीय रेशम की मुख्य समस्या यह रही है कि अंतर्राष्ट्रीय कोटि निर्धारण के तकनीकी स्तर के अनुसार इसकी गुणवत्ता कम है । इसका एक कारण यह है कि भारत में रेशम का उत्पादन परंपरागत रूप से घरेलू मांग पर, मुख्यतः भारी हथकरघा आधारित साड़ी जैसे वस्त्र बनाने के लिए होता था । इसके परिणामस्वरूप उत्पादन की प्राथमिकताओं में अंतर्राष्ट्रीय स्तर की गुणवत्ता की अपेक्षिताओं को अभी पूरा करना है । अभी विद्युत करघा क्षेत्र के लिए बड़े पैमाने पर एक समान गुणवत्ता वाले रेशम की आवश्यकता है ।

रेशम उत्पादन कार्यकलापों को मुख्यतः दो भागों में वर्गीकृत किया गया है : क्षेत्र एवं औद्योगिक क्षेत्र । कृषि आधारित पक्ष में कार्यकलापों के दो सुस्पष्ट चरण हैं अर्थात् शहतूत कृषि एवं रेशम कीटपालन । रेशम कीटपालन को फिर दो भागों में विभाजित किया गया है : शिशु रेशम कीटपालन - प्रथम अवस्था से दूसरी अवस्था । तीसरी अवस्था मध्य अवस्था होने पर भी इसे शिशु अवस्था मानी जाती है । चौथी एवं पांचवीं अवस्था का पालन वयस्क कीटपालन में आता है । रेशम कीटपालन को वस्त्र उद्योग की जैव निर्माण कच्चा सामग्री, "कीट कारखाना" कहा जाता है । इसके लिए प्रति एकक क्षेत्रफल की उत्पादकता बढ़ाने, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गुणात्मक वृद्धि के लिए नई सामग्री एवं अन्य वस्तुएं निर्मित करने हेतु रेशमकीट के बुनियादी जैविक कार्य का उपयोग करने का नवीन मार्ग ढूंढ निकालना आवश्यक है जिससे हमारा जीवन स्तर और आर्थिक बल बढ़ेगा । अंत में कीट जैव प्रौद्योगिकी के आधार पर नए उद्योगों की स्थापना करने हेतु रेशम उत्पादन विज्ञान की उपलब्धियों और अनुभवों के लंबे इतिहास पर निर्माण करने का लक्ष्य रखना चाहिए । संकल्पना की जाती है कि पणधारियों मुख्यतः रेशम कीटपालकों एवं धागाकारों को केवल मुख्य उत्पाद अर्थात् कोसों एवं कच्चे रेशम से ही राजस्व प्राप्त न करना है बल्कि कीमती उपोत्पादों से भी आय प्राप्त करनी चाहिए ।

राष्ट्र का वर्तमान रेशम उत्पादन परिदृश्य

भारत के इस पुरातन कृषि आधारित कुटीर उद्योग की जटिल समस्याओं और संभावनाओं को समझने हेतु हमें विश्व रेशम परिदृश्य की तुलना में देशी स्थिति का पर्यवलोकन करना चाहिए । वर्ष 2010-11 में विश्व में कच्चे रेशम का उत्पादन 1,37,002 मीटरी टन था जिसमें चीन ने अपने 1,15,000 मी.ट. वार्षिक उत्पादन से कुल कच्चे रेशम उत्पादन में 83.94% दर्ज किया । भारत विश्व में कच्चे रेशम उत्पादन में करीब 14.89% के साथ दूसरे स्थान पर है । यद्यपि कई एशियाई, अफ्रीकी एवं लैटिन अमरीकी राष्ट्रों में रेशम का उत्पादन होता है, फिर भी हाल के वर्षों में चीन और भारत को छोड़कर बाकी सभी राष्ट्रों में रेशम उत्पादन में कमी होती जा रही है । वर्ष 2011-12 के दौरान भारत का कच्चा रेशम उत्पादन 23,060 मी.ट. रहा जिसमें 18,272 मी.ट.शहतूत रहा जो राष्ट्र के कुल उत्पादन में 79.24% है । शेष 4,788 मी.ट. (20.76%) का उत्पादन वन्य (शहतूत इतर) रेशम का रहा । मुख्यतः शहतूत रेशम उत्पादन पाँच राज्यों यथा कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, पश्चिम

बंगाल, तमिलनाडु एवं जम्मू व कश्मीर में किया जाता है । यह उत्पादन संयुक्त रूप से राष्ट्र के कुल शहतूत रेशम उत्पादन में करीब 96% रहा है । स्वतंत्रता से लेकर भारतीय रेशम उद्योग लगातार प्रगति करता रहा, फिर भी वर्ष 1997-98 से शहतूत कच्चा रेशम उत्पादन 14,000 और 16,000 मी.ट. के बीच निश्चल रहा जो कि चिंताजनक विषय है । वर्ष 1997-98 एवं 2009-10 के बीच की अवधि के दौरान शहतूत कृषि का क्षेत्रफल लगभग 34% कम हो गया है । शहतूत बागान के क्षेत्रफल में कर्नाटक में अधिकतम ह्रास हुआ जोकि राष्ट्र का मुख्य रेशम उत्पादन राज्य है । कर्नाटक का शहतूत क्षेत्रफल जो वर्ष 1997-98 में 1,66,000 हेक्टार था, वर्ष 2009-10 में 82,098 हेक्टार तक घट गया । रेशम उत्पादन क्षेत्र में हुआ तेज़ नगरीकरण, निवेश लागत में हुई वृद्धि, श्रम समस्याएँ एवं बदलती फसल पद्धति राष्ट्र के शहतूत क्षेत्रफल में हुए ह्रास के मुख्य कारक माने जाते हैं । रेशम उत्पादन क्षेत्रफल में अधिक गिरावट होने के बावजूद शहतूत कोसा एवं कच्चा रेशम उत्पादन स्तर में लगातार विकास होता रहा है । उत्पादकता बढ़ जाने के मुख्य कारण अधिक पत्ती उपज वाली उपजातियों, उन्नत रेशमकीट प्रजातियों तथा रेशमकीट पालन एवं रेशम धागाकरण में बेहतर प्रविधियों को अपनाना है।

भारत संसार में सबसे बड़ा रेशम उपभोक्ता है । परंपरागत विशेष परिकल्पनाओं और बुनावट युक्त भारतीय रेशम बुनाई उद्योग कुछ विशेष क्षेत्रों तक सीमित है । भारत में रेशम वस्त्र उत्पादित करने हेतु 2,58,068 हथकरघे और 50,130 विद्युतकरघे चालू हैं । करीब 60% रेशम की खपत विद्युत करघों में और शेष की हथकरघों में हो जाती है । भारत कई प्रकार की रेशम बुनावट, गठन एवं प्रतिकृतियों यथा बनारस के उत्कृष्ट ज़री वस्त्र, कर्नाटक के मैसूर सिल्क, गुजरात एवं राजस्थान के टाई ऐंड हाई एवं पटोला, उडीसा के आईकत, काँचीपुरम एवं तंजावूर के सूक्ष्म भांधेज एवं टेंपल सिल्क के लिए संसार भर में मशहूर हैं । जैसाकि देशी उत्पादन से राष्ट्र की रेशम की बढ़ती माँग की पूर्ति नहीं हो सकती, इसलिए भारत को हर साल बड़े पैमाने पर कच्चे रेशम एवं वस्त्र को आयात करना आवश्यक पड़ता है । भारत ने वर्ष 2011-12 में 5,673 मी.ट.कच्चा रेशम एवं 4,100 मी.ट. रेशम वस्त्र आयात किया है, जो कुल मिलाकर राष्ट्र के आंतरिक उत्पादन का प्राय: 42% बनता है । चीन द्वारा भारत में कच्चा रेशम एवं रेशम माल निर्यात करने हेतु अनुसरण की जाने वाली उपद्रवी मूल्य नीतियों ने देशी बाजार में शहतूत कोसा एवं कच्चे रेशम मूल्य को अस्तव्यस्त कर दिया है और इससे राष्ट्र के रेशम उद्योग की वृद्धि एवं विकास पर बुरा प्रभाव पड़ा है ।

पूर्व उपलब्धियाँ एवं भविष्य की चुनौतियां

रेशम उत्पादन अनुसंधान का प्रभाव :

कें रे अ प्र सं, मैसूर देश में विशेषत: दक्षिण प्रायद्वीपीय भारत में रेशम उत्पादन विकसित करने में निकटता से सम्बद्ध है । मुख्यत: भारी रेशम उत्पादक दक्षिणी राज्यों यथा कर्नाटक, आंध्रप्रदेश और तमिलनाडु का शहतूती क्षेत्रफल कुल शहतूती क्षेत्रफल में लगभग 70% है और ये राज्य कुल कच्चे रेशम उत्पादन में करीब 86% का योगदान देते हैं । अत: संस्थान की उपलब्धियों का देश में रेशम उत्पादन उद्योग की वृद्धि और विकास पर सीधा प्रभाव पड़ता है । अनुसंधान के परिणामों से उत्पन्न बहुत से उत्पादों का एकस्वकरण और वाणिज्यीकरण किया गया है । वर्ष 1970 एवं 1980 के दौरान इन तीनों राज्यों तथा राष्ट्र में शहतूत क्षेत्रफल में पर्याप्त वृद्धि हुई । वर्ष 1960 के दौरान आंध्रप्रदेश एवं तमिलनाडु में रेशम उत्पादन कार्यकलाप नगण्य थे, लेकिन वर्ष 1970 एवं 1980 के दौरान इन दोनों राज्यों तथा कर्नाटक में अनुसंधान की उपलब्धियों और अनुसंधान विस्तारण केंद्रों एवं राज्य रेशम उत्पादन विभागों के विस्तारण कार्यकलापों के साथ अनुसंधान निवेश से युक्त होने के कारण शहतूत क्षेत्रफल में असामान्य वृद्धि हुई । तथापि वर्ष 1990 के मध्य से लेकर इन सभी राज्यों में कोसा मूल्य, नगरीकरण, चीन से सस्ते रेशम का आयात, अन्य कृषि फसलों से प्रतियोगिता, कृषि श्रमिकों की उपलब्धता में कमी, मजूरी दर में वृद्धि आदि के कारण शहतूत क्षेत्रफल में बहुत कमी हुई । लेकिन उत्पादकता स्तर में हुई वृद्धि के कारण कच्चा रेशम उत्पादन में गिरावट नहीं हुई । कच्चे रेशम की उत्पादकता 1961-62 में 15 किलोग्राम/हे से बढ़कर 2011-12 में 93 किलोग्राम /हे हुई जो कि करीब 520% है । इसी तरह रेंडिट्टा 1961-62 में 17 से घटकर 2011-12 में 8.07 हुआ । यह सब कोसा गुणवत्ता और रेशम अंश में सुधार होने के कारण कच्चे रेशम की प्राप्ति में हुई अत्यधिक वृद्धि को दर्शाता है ।

अनुसंधान एवं विकास के केंद्र बिंदु

आगामी वर्षों में व्यक्तियों में सृजनात्मकता और अभिनवकरण को बढ़ावा देने नए उत्पाद क्रियाविधि एवं प्रौद्योगिकियाँ विकसित करने, परामर्शी व्यवसाय विकसित करने, भारत और विदेश में प्रौद्योगिकियों के वाणिज्यीकरण को बढ़ावा देने नवीनतम

बौद्धिक संपत्ति अधिकार नीति के बारे में जागरूक बनाने आदि पर संकेंद्रित करना और बल देना अत्यावश्यक है । इसके लिए अपनाने हेतु निम्नानुसार रूपायित किया गया है :

1. अनुसंधान व विकास की सुसंगता की परिकल्पना करना, योजना बनाकर कार्य करना ।
2. प्रत्येक प्रयोगशाला के लिए सांस्थानिक पद्धति में व्यवहार्य, सुनिश्चित और वैज्ञानिक तौर पर चुनौती देने वाले अनुसंधान एवं विकास परियोजनाएं तैयार करना । यह प्रयोगशाला की क्षमता सुदृढ करने में सहायक होगा ।
3. वैज्ञानिकों और प्रौद्योगिकिकों को आकर्षित करने हेतु सुस्थिर विकास केंद्र निर्मित करना । ऐसे केंद्र स्पष्ट दृष्टि से भविष्य देखने के लिए विचारों के सृजन की ओर लक्ष्य रखेंगे ।
4. आपसी रुचिकर विषयों पर अंतरा संस्थान सक्रिय सहयोग के लिए प्रोत्साहित कर विकसित करना और साझेदारी संस्थानों के वैज्ञानिकों में उपलब्ध एकस्वों को काम में लाकर साधनों को अनुकूल रूप से बांट लेना ।

सुस्थिर रेशम उत्पादन : आज की माँग

सुस्थिर रेशम उत्पादन के लिए क्षेत्र का मतलब मृदा, पौधों एवं कीटों जैसे तत्वों से निर्मित पारितंत्र - "कृषि पारितंत्र" के रूप में कृषि क्षेत्र आवश्यक है । इन तत्वों को समस्याओं को हल करके अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए समृद्ध या समायोजित कर सकते हैं । यह एकीकृत प्रणाली व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक है । यह परिणाम प्राप्त करने हेतु प्राकृतिक तंत्रों के आपसी प्रभाव संबंधी आधुनिक ज्ञान और नवीन प्रौद्योगिकियों पर निर्भर है । यह प्रणाली शक्तिशाली है जो कृषकों को अधिक उपज एवं लाभ प्रदान कर सकती है । इस प्रकार के भविष्य का निर्माण कैसे किया जा सकता है आज की और भावी पीढ़ियों की जरूरत की पूर्ति करने वाले समृद्ध स्थिर रेशम उत्पादन तंत्र सृजित करने हेतु हमें दोनों विज्ञान और रेशम उत्पादन अर्थशास्त्र पर आधारित नवीन सरकारी नीतियाँ अपेक्षित हैं, कृषि का समर्थन करने सभी प्राकृतिक तंत्रों के आपसी प्रभाव की खोज करने तथा समुचित नई प्रौद्योगिकियाँ विकसित करने हेतु अनुसंधान, कृषकों को स्थिर रेशम उत्पादन अपनाने में सहायता देने हेतु रेशम उत्पादन प्रौद्योगिकी में नए विकासों तथा वर्तमान कार्यक्रमों से अधिक रचनात्मक सहायता राशि कार्यक्रमों से अवगत कराने हेतु विस्तार सेवाएँ आदि आवश्यक हैं । यदि हम वर्तमान और भविष्य के लिए स्वस्थ, उत्पादक रेशम उत्पादन तंत्र सृजित करना चाहते हैं, तो हम बेहतरीन कर सकते हैं और हमें बेहतरीन करना आवश्यक है । स्थिर रेशम उत्पादन विकास के लिए सामना किए जाने वाले मुख्य मामले निम्नानुसार है :

- कोसा उत्पादन कार्यकलापों के लिए निकट समूह प्रणाली में समर्थन देना ।
- मूल्य वर्धन कार्यकलापों का समर्थन करना ।
- रेशम उत्पादन उत्पादों के विपणन में समर्थन करना ।
- रेशम उत्पादन कृषि क्षेत्र एवं रेशम औद्योगिक उत्पादकता बढ़ाने हेतु अनुसंधान का समर्थन करना ।
- सार्वजनिक - निजी साझेदारी के माध्यम से रेशम उत्पादन का उन्नयन करना ।
- प्रौद्योगिकी स्थानांतण कार्यकलापों को विशेषकर कोसोत्तर क्षेत्र में और सुदृढ़ करना ।
- नियमन एवं गुणवत्ता आश्वासन सेवा संस्थापित करना ।

दीर्घकालीन रेशम उत्पादन की कार्यनीतियाँ

दीर्घकालीन रेशम उत्पादन प्रस्तावों को पीड़क, पोषण, मृदा एवं जल प्रबंधन प्रौद्योगिकियों के एकीकृत और सहक्रियात्मक उपयोग पर केंद्रित होना चाहिए । अधिक ऊर्जा उपयोगी यंत्रीकरण के समान रासायनिक उर्वरकों, पीड़कनाशियों एवं उन्नत बीजों जैसी खरीदी या बाहरी निवेशों पर निर्भरता को कम करना है । रेशम उत्पादन की तेज वृद्धि के लिए अधिक सुनम्य जल प्रबंधन पद्धतियाँ आवश्यक हैं और यह अप्रचलित सिंचाई अवसंरचना वाले क्षेत्रों के लिए चुनौती है । आज की चुनौतियाँ बहुत हैं और परस्पर विरोधी हैं । रेशम उत्पादन पैदावार (उपज) बढ़ाना आवश्यक है। नकारात्मक पर्यावरणीय प्रभावों को कम किया जाना है और उत्पादन को रासायानिकों के अधिक उपयोग के कारण होने वाले जलवायु परिवर्तन से लेकर त्वरित और सदा परिवर्तन होने वाले पर्यावरण के अनुकूल बनना है ।

कृषि प्रणाली के परिप्रेक्ष्य :

सिंचित और वर्षाश्रित कृषि के अधिक संभावित क्षेत्रों में गहन कृषि प्रबंधन को सुधारना आवश्यक है क्योंकि कम शिक्षित कृषक इसका उपयोग कर रहे हैं और अपर्याप्त विस्तारण एवं प्रशिक्षण, जल गुणवत्ता का अप्रभावी नियंत्रण आदि ने समस्या को और भी गहरा बनाया । निवेश मूल्य नीति और सहायता राशि नीति के कारण आधुनिक निवेश सस्ता हो गया और इसका उपयोग अधिक करने को प्रोत्साहन मिला । उन्नत प्रौद्योगिकियाँ यथा समुचित कृषि प्रणाली (भौगोलिक सूचना प्रणाली), पीड़क प्रबंधन के पारिस्थितिक सिद्धांत और उन्नत जल प्रबंधन प्रणालियाँ रासायनिक उपयोग कम करते हुए उपज बढ़ाती हैं । इससे साबित होता है कि गहन कृषि, पर्यावरण के प्रबंधन के विरुद्ध नहीं होना चाहिए । कृषक इन प्रौद्योगिकियों को धीरे-धीरे अपनाते हैं। इसका कारण सरकार द्वारा कृषि रसायनों के लिए दी जाने वाली सहायता राशि है । आर्थिक मदद से किसान इन निवेशों को अधिक डालकर दुरुपयोग करने को प्रेरित होते हैं । तथापि दूसरा कारण यह है कि इन उन्नत प्रौद्योगिकियों के लिए अधिक श्रम और गहन ज्ञान अपेक्षित है और कृषकों को इसे अपनाना कठिन और कीमती है । किसी भी क्षेत्र में एक पद्धति को शीघ्र और आसानी से बदलना संभाव्य नहीं है । लेकिन परिवर्तन कैसे और किस स्तर पर करना है और वे कैसे आपसी प्रभाव डालें ? यह समझकर इस दिशा में अधिक श्रम करने पर विचारों को मूर्तरूप मिलेगा, साथ ही जल्दी लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

निम्न लागत का यंत्रीकरण विकसित करना

हमारे राष्ट्र में अब तक कृषि यंत्रीकरण के लिए मुख्य चालक ट्रैक्टर ही रहा । अभिकल्पक और विनिर्माता कृषि के मुख्य स्रोत के रूप में ट्रैक्टर पर भी निर्भर रहे हैं और इसलिए वाणिज्यिक तौर पर उपलब्ध अधिकांश कृषि उपकरण ट्रैक्टर चालित हैं । तथापि जैसाकि हम सभी जानते हैं रेशम उत्पादन अधिकतर लघु एवं सीमांत कृषक करते हैं जिनकी कम कृषि भूमि और कमजोर आर्थिक स्थिति उन्हें अधिक कीमती कृषि यंत्र और उपस्कर विशेषकर ट्रैक्टर और हारवेस्टर अकेले खरीदना आर्थिक रूप से व्यवहार्य नहीं है । अत: हम क्षेत्र यंत्रीकरण पर पुन: विचार करके पुनर्निर्माण कर सकते हैं ताकि हम लघु एवं सीमांत कृषकों को यंत्रीकरण के दायरे में ला सकते हैं। भारत में कृषि यंत्रीकरण का भविष्य निम्न लागत की कृषि यंत्रावली एवं उपस्करों की सफल अभिकल्पना, विकास और आसान उपलब्धता पर आधारित है । जो उपस्कर हमारे विविध प्राकृतिक संसाधनों की मांग के अनुरूप ही नहीं, बल्कि भारतीय रेशम उत्पादन के विस्तृत और अपेक्षाकृत कम उत्पादन करने वालों की आर्थिक स्थिति के अनुरूप भी होगा ।

भविष्य की अनुसंधान कार्यनीतियाँ :

यद्यपि उत्पादन एवं उत्पादकता में यथेष्ट प्रगति हुई है, फिर भी देश में मांग और आपूर्ति में बहुत अंतराल रह गया है। आगे मुक्त व्यापार क्षेत्र में प्रतिस्पर्धी रह जाने के लिए देश में उत्पादित कच्चे रेशम के उपज स्तर और गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए बहुत कुछ गुंजाइश है । देशी और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं को पार करने के लिए और रेशम के गुणवत्ता स्तर को सुधारने के लिए भविष्य के अनुसंधान के लिए निम्नलिखित कार्यसूची बनाई गई है :

- शहतूत एवं रेशमकीट नस्लों के गुणात्मक/मात्रात्मक लक्षणों का उन्नयन
- समस्यात्मक मृदाओं के लिए शहतूत उपजातियों और कृषि प्रणालियों का विकास करना
- मृदा स्वास्थ्य एवं सभी मौसम और क्षेत्रों में पोषक प्रबंधन में सुधार लाना
- श्रम शक्ति पर निर्भरता को घटाने के लिए कम लागत वाले उपकरण, उपस्कर और यंत्रावली विकसित करना
- शहतूत और रेशमकीट में पीड़कों एवं रोगों से होने वाली फसल हानि को घटाना
- अधिक से अधिक कृषकों को सहभागी बनाकर विस्तारण नमूना विकसित करना
- विकसित देशों के साथ प्रतिस्पर्धा में बने रहने के लिए कार्यनीति विकसित करने के लिए सामाजिक एवं आर्थिक अनुसंधान करना
- अधिक मूल्य उत्पादों का विविधीकरण और विकास

संगठन के लिए आगे की चुनौतियाँ

- प्रत्याशाओं को सही दिशा में ले जाना और चालू अभिनवकरण की ओर प्रेरणा जारी रखना।
- इसके विकास में नए अभिनवकरण का विश्लेषण तथा मूल्यांकन करने निर्दिष्ट माप तैयार करना और नए अभिक्रम को कब छोड़ देना/बढ़ावा देना है, इस पर निर्णय लेना ।
- संगठन में सभी के द्वारा दी गई सहमति के अनुसार सुचारु कार्य संचालन हेतु परिमाणात्मक और गुणात्मक स्तर बनाए रखना ।
- नवीकरण के माध्यम से प्रगति पथ पर अग्रसर होना संभव है । यही नहीं, संगठन के लिए यह अनिवार्य भी है ।

भारतीय रेशम उद्योग चुनौतीपूर्ण समय से गुज़र रहा है जब देशी कच्चे रेशम की माँग बहुत बढ़ रही है और राष्ट्र के कच्चे रेशम की दो तिहाई माँग की पूर्ति बहुधा चीन से आयातित रेशम से हो रही है । देशी रेशम उत्पादन की धीमी वृद्धि, शहतूत क्षेत्रफल में हुई कमी, कच्चे रेशम की पुरातन परंपरागत उत्पादन प्रणाली, कम उत्पादकता, कृषकों और धागाकारों द्वारा छोटे ढेरों में उत्पादन, अंतर्राष्ट्रीय मानक से कम गुणवत्ता वाला रेशम (बहुप्रज संकर रेशम), राष्ट्र में सस्ते चीनी रेशम का बढ़ता आयात और रेशम निर्यात में अप्रभावी वृद्धि भारतीय रेशम उद्योग के सन्निकट भविष्य की चुनौतियाँ हैं । रेशम उत्पादन को अधिक सुस्थिर बनाने की ओर अग्रसर होना बड़ी चुनौती है, लेकिन यह किया जा सकता है । परिवर्तन करने हेतु यह जानना अनिवार्य है कि हम कहाँ पर हैं और कहाँ तक आगे जाना चाहते हैं ।

परिवर्तन नियंत्रक

रेशम की माँग एवं आपूर्ति कई कारकों से प्रभावित हैं । रेशम उत्पादन कृषि आधारित ग्रामीण उद्योग होने के कारण रेशम की आपूर्ति रेशम उत्पादन के संगत मूल्य एवं लाभदायकता और विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों के प्रति कृषकों की प्रतिक्रिया पर निर्भर है जैसाकि वे भूमि एवं अन्य संसाधनों के आबंटन के बारे में अंतिम निर्णायक हैं । रेशम उत्पादन में लाभदायकता बढ़ाने के कुछ उपाय ये हैं कि उत्पादकता वृद्धि, मूल्य संवर्धन, गुणवत्ता वृद्धि, रद्दी कम करना आदि । दूसरी ओर रेशम की माँग इस प्रकार के कारकों से प्रभावित हैं कि उपभोक्ता की माँग में परिवर्तन, जनसंख्या परिवर्तन, सरकारी नीतियाँ और विनियम, अन्य वस्त्रों से प्रतिस्पर्धा, फैशन में परिवर्तन, लोगों के खरीदने की क्षमता आदि । विश्व व्यापार संगठन के अंतर्गत विश्व व्यापार उदारीकरण के बाद भारत पिछले दो दशकों से प्रतियोगी नीतियों के साथ अपने अर्थशास्त्र को उदार बनाता रहा है । अर्थव्यवस्था तेज बढ़ने तथा मध्यवर्गीय एवं अमीर लोगों की अधिक निपटान आय के फलस्वरूप लोगों की रुचि एवं पसंद बदलती रहती है । शहर के लोग भी छोटे-छोटे पाश्चात्य वस्त्र धारण अपनाने में लगे हैं । ये सभी परिवर्तन भी रेशम उद्योग को प्रभावित करते हैं ।

उद्योग में प्रौद्योगिकी परिवर्तन नियंत्रकों की निर्णायक भूमिका

रेशम उत्पादन उद्योग की आर्थिक स्थिति को व्यवस्थित करने वाले कई मुख्य घटक हैं । चार प्रबल शक्तियाँ अभी कार्य कर रही हैं - बढ़ती एवं विविधीकृत मांग, प्रौद्योगिकी संसाधन की उपलब्धता और सामाजिक प्रभाव । प्रत्येक घटक की अलग से और संयुक्त रूप से भी क्षेत्र के आकार एवं उद्योग के अन्य भागों से संबंध को मिलाकर फसल उत्पादन संरचना हेतु विवक्षाएं हैं। रेशम रेशा की बढ़ती मांग के साथ-साथ रेशम उत्पादन हेतु औद्योगिक अनुप्रयोग भी उभर रहे हैं । ऊर्जा, पोलिमर, रसायन एवं औषध उद्योग अपनी क्रियाविधि के लिए नवीकरणीय कच्ची सामग्री प्राप्त करने हेतु रेशम उत्पादन क्षेत्र की ओर देख रहे हैं। परिवर्तन नियंत्रक सुझाते हैं कि फसल उत्पादकों को बढ़ती उत्पादकता को लक्ष्य करते हुए परिश्रम करना संकटपूर्ण होगा । सीमित प्राकृतिक संसाधनों एवं बढ़ती सामाजिक अपेक्षिताओं को लेकर बढ़ती विश्व जनसंख्या की मांग पूरी करने हेतु उत्पादकों को बढ़ती दरों पर प्रति एकड़ की उपज बढाते रहना आवश्यक है । नई भूमि को उत्पादन के अधीन लाकर कुल उत्पादन बढ़ाया जा सकता है । लेकिन उपलब्ध उत्पादक भूमि सीमित है । इस प्रकार क्षेत्र की उत्पादकता बढ़ाने में "प्रौद्योगिकी अभिग्रहण" की महत्वपूर्ण भूमिका है । जिस गति से इन प्रौद्योगिकियों को विकसित करके अपनाया जाता है । यह फसल उत्पादन के अर्थशास्त्र एवं नई प्रौद्योगिकियाँ स्वीकारने हेतु समाज की इच्छुकता पर निर्भर होगा । हमें विश्वास है कि प्रौद्योगिकियाँ अपनाना बड़ी बात नहीं है लेकिन जिस गति से इन्हें अपनाया जाता है, यही महत्वपूर्ण है ।

विश्व एवं क्षेत्रीय जलवायु में परिवर्तन

रेशम उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का मूल्यांकन करना अधिक जटिल है । अंतर्निहित नियंत्रक शक्तियों की प्रकृति पर विस्तृत वैज्ञानिक चर्चा हो रही है , फिर भी रेशम उत्पादन को प्रभावित करने वाले जलवायु की अस्थायी और स्थानिक पैटर्न में परिवर्तन की स्पष्ट सबूत है । वर्षा की बढ़ती अस्थिरता और विभिन्नता कृषकों के लिए अति महत्वपूर्ण रही। रेशम उत्पादन प्रणाली को जलवायु परिवर्तन के अनुकूल होने की अच्छी क्षमता है, लेकिन इसकी कई चुनौतियाँ है जिन्हें पूरी तरह नहीं समझा गया है । जलवायु को अनुकूल बनाने के उपाय समझने हेतु अनुसंधान करने की आवश्यकता है ।

निष्कर्ष

रेशम उत्पादन व्यापार के वैश्वीकरण से बाज़ारों में अग्र प्रवेश, रोजगार एवं आय प्राप्त करने हेतु नए अवसर, उत्पादकता प्राप्ति होगी एवं दीर्घकालीन रेशम उत्पादन एवं ग्रामीण विकास में अधिक निवेश आसानी से हो जाएगा । सही प्रबंध किए जाने पर रेशम उत्पादन बाज़ार के उदारीकरण से दीर्घकाल में फायदा होगा । इससे नई प्रौद्योगिकियों को अपनाने का बल मिलेगा, उत्पाद कार्यों में वृद्धि होगी और वंचित क्षेत्र में नई पूँजी प्राप्त हो जाएगी । तथापि, छोटे एवं जीवन-निर्वाह करने वाले कृषकों के हितों पर ध्यान देने पर ही यह सार्थक होगा । वैश्वीकरण को अपनाते समय यह अनिवार्य है कि हमें अधिक न्यायसंगत, समान, दीर्घीकृत जीवनस्तर के लिए सामाजिक अभिलाषाओं को नहीं भूलना है । व्यापार करार को लघु कृषकों के अनुकूल बनाने हेतु प्रचालन प्रभावी उपायों से युक्त होना चाहिए ।

नगरीकरण से जुड़े हुए कारकों के कारण परंपरागत क्षेत्रों में रेशम उत्पादन का क्षैतिज विकास सीमित है, इसलिए रेशम उत्पादन नए क्षेत्र में कराया जाना है ताकि हर दिशा में विकास का लाभ हो सके। नए आँकडे संचय, अंतर्राष्ट्रीय आँकडे संचय से संबद्धकृत आँकड़े संचय एवं मूल्य वर्धित सूचना विकसित करते हुए रेशम उत्पादन सूचना विज्ञान को सुदृढ़ करने हेतु प्रयास किया जाना चाहिए ताकि विभिन्न स्तरों पर निर्णय लेने में सुविधा हो सके । उत्पादन क्षमता का पूर्वानुमान करने हेतु विभिन्न रेशम उत्पादन पारिस्थिति प्रणालियों के लिए उत्पादन प्रतिमान विकसित करने पर महत्व देना है । सुदूर संवेदी एवं जीआईएस प्रौद्योगिकियों का उपयोग करते हुए सूक्ष्म एवं स्थूल स्तर पर प्राकृतिक एवं अन्य रेशम उत्पादन संसाधन का मानचित्र तैयार करके भूमि एवं जल के उपयोग की योजना बनाने, रेशम उत्पादन पर पूर्वसूचना देने, बाज़ार आसूचना, ई-व्यापार, तत्काल योजना बनाने तथा रोग एवं पीड़क प्रकोप की सूचना देने हेतु प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाना चाहिए ।

निष्कर्षत: यह बताया जा सकता है कि रेशम उत्पादकता बढ़ाने हेतु मानव संसाधन विकास, रेशम उत्पादन अनुसंधान एवं विकास, उन्नत सूचना एवं विस्तारण, बाज़ार एवं कृषक नियंत्रित सक्षम लघु प्रौद्योगिकियाँ तथा उपभोक्ता भाड़ा सेवाएँ आवश्यक हैं । इस प्रकार के निवेश से लघु कृषकों को बाज़ार स्थितियों के अनुकूल बनने तथा प्रतिक्रिया दिखाने हेतु विकल्प एवं अवसर प्राप्त होंगे । भविष्य में सामना करने हेतु मूल्य संवर्धन बढ़ाना अगला विकास पक्ष है । अब तक निवेश एवं उत्पाद पर ध्यान केंद्रित था और अभी अधिकतम मूल्य संवर्धन हेतु बाजार संचालित कार्यनीतियों पर केंद्रित करना है । कृषकों द्वारा खर्च किए समय एवं धन के बदले प्राप्त होने वाली आय को बढ़ाने हेतु उच्च मूल्य संवर्धन का सूत्र "प्रगामी कार्यनीति ढांचा" कार्यान्वित किया जाना है।

रेशम उत्पादन के लिए शहतूत की प्रमुख उपजातियाँ

एम.के.पी. अरस एवं एस एम एच क़ादरी

रेशमकीट (बोम्बिक्स मोरि एल) का एकमात्र खाद्य पौधा शहतूत है और शीतोष्ण से उष्णकटिबंध तक की विभिन्न जलवायु स्थितियों में उगाई जाती है । यह तेज बढ़नेवाली पर्णपाती बहुवर्षीय पौधा है ।

शहतूत पत्ती रेशम उत्पादन का मुख्य आर्थिक घटक है । चूँकि उत्पादित पत्ती की गुणवत्ता और परिमाण का कोसा प्राप्ति से सीधा संबंध है, इसलिए शहतूत उपजाति की उपयुक्तता के लिए उसके सस्य-विज्ञान अभिलक्षणों एवं रेशमकीटों को उसे खिलाने की उपयुक्तता के आधार पर विचार किया जाना है ।

सिंचित स्थितियों के लिए संस्तुत उन्नत शहतूत उपजातियाँ

1. कनवा**-2**

यह मैसूर स्थानीय के खुले परागित संकरों से चयनित है और यह सामान्यतया के -2 या एम-5 के नाम से जाना जाता है। यह एस-36 और वी-1 जैसी उन्नत उपजातियाँ विमोचित होने के पहले विशेषकर सिंचित क्षेत्रों में कीटपालकों द्वारा बखूबी स्वीकृत उपजाति है । सीधी वृद्धि, मध्यम स्तर की शाखाएँ, धुँधले रंग का तना आदि इस उपजाति के अभिलक्षण हैं । पत्तियाँ साधारण, पालि रहित और चिकनी सतह वाली और हृदयाकार होती हैं । यह सिंचित स्थितियों में संस्तुत अनुप्रयोग पैकेजों का प्रयोग करने से करीब 32-35 मे ट/हे/वर्ष पैदावार देती है और अर्धशुष्क वर्षाश्रित स्थितियों में लगभग 10-12 मे ट/हे/वर्ष की उपज देती है ।

2. एस **36**

उपजाति एस-36 को बहरमपुर स्थानीय के एकरूप बीजों से रासायनिक उत्परिवर्तजन के माध्यम से विकसित किया गया । छोटे पर्व अर्ध-ऊर्ध्व प्रकृति की मध्यम प्रकार की शाखाएँ और धुँधले गुलाबी रंगीन तना आदि इसके अभिलक्षण हैं । पत्तियाँ पालि रहित, हृदयाकार, चमकदार, हल्की हरी और चिकनी सतहवाली होती हैं । सिंचित स्थितियों में इसकी खेती करने हेतु सिफारिश की गई है । संस्तुत समग्र प्रणाली से यह 38-45 मे ट/हे/वर्ष की पैदावार देती है । इसकी अधिक गूदेदार एवं पोषक गुणवत्ता के कारण इसे शिशु रेशम कीटपालन के लिए संस्तुत किया गया है ।

3. विक्टरी**- 1 (**वी **1)**

इसे आम तौर पर वी-1 नाम से जाना जाता है । यह एस-30 एवं बर सी-776 के मानक परागित संकरों से चयनित है । सीधी शाखाएँ, धुँधले रंगीन तना इस उपजाति के अभिलक्षण हैं । पत्तियाँ मोटी, गूदेदार, बडी, अखंड, रुंडित आधार की होती हैं और चिकनी और चमकदार होती हैं । इसके उत्तम मूलन, तेज वृद्धि और उच्च पैदावार जैसे अच्छे सस्य विज्ञानीय अभिलक्षण हैं । सिंचित स्थितियों में संस्तुत समग्र प्रणाली का प्रयोग करने से यह करीब 60 मे ट/हे/वर्ष की पैदावार देती है । जैव आमापन एवं रासायनिक आमापन परीक्षणों ने रेशम कीटपालन हेतु इस उपजाति को श्रेष्ठ साबित किया है ।

4. जी **- 4**

यह एम मल्टिकॉलिस एवं एस-13 के पर-परागित संकरों से नई विकसित उपजाति है । यह उपजाति खुली झाडियाँ, तेजी वृद्धि एवं उच्च शाखाकरण अभिलक्षणों से युक्त है । शाखाएँ सीधी हैं, धुँधली और छोटे पर्व वाली हैं । पत्तियाँ गहरी हरी, पालि रहित, हृदयाकार, मोटी और सर्पिल सतह वाली हैं । इसकी उच्च मूलोत्पत्ति क्षमता है । सुनिश्चित सिंचाई एवं संस्तुत समग्र प्रणाली से यह 60 मे ट/हे/वर्ष की पैदावार देती है । यह उपजाति वयस्क कीटपालन के लिए संस्तुत है ।

5. जी **- 2**

जी-2 उपजाति एम मल्टिकॉलिस एवं एस-34 के मानक परागित संकरों से चयनित है । चिकनी, चमकदार, गहरी हरी एवं थोडा-सा सर्पिल किनारे वाली बडी अखंड, हृदयाकार वाली पत्तियाँ इस उपजाति के अभिलक्षण हैं । यह 8 फसल प्रति वर्ष कार्यक्रम (एकांतरित पत्ती तुडाई एवं प्ररोह कटाई) से 36-38 मे ट/हे/वर्ष चॉकी पत्तियों की पैदावार देती है । यह उपजाति शिशु रेशम कीटपालन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है और इसे चॉकी बागान उगाने हेतु ही संस्तुत किया गया है ।

वर्षाश्रित स्थितियों के लिए संस्तुत उन्नत शहतूत उपजातियाँ

1. एस**-13**

शहतूत उपजाति एस-13 कण्वा-2 के खुले परागित संकरों से चयनित है । छोटे पर्व और अनेक शाखाएँ पैदा करने की क्षमता इस उपजाति के अभिलक्षण हैं । पत्तियाँ मोटी, हरी, पालि रहित और चिकनी सतह वाली हैं । यह उपजाति लाल दोमट मिट्टी वाले वर्षाश्रित क्षेत्रों के लिए और आंध्रप्रदेश के उच्च तापमान वाले जलाभाव क्षेत्रों के लिए संस्तुत की गई है । यह वर्षाश्रित स्थितियों में 12-15 मे ट/हे/वर्ष की पैदावार देती है ।

2. एस-34

एस-34 उपजाति एस-30 एवं बर. सी-776 के पर-परागित संकरों से विकसित है । यह उपजाति तेज बढ़ने वाले, गहरे एवं विस्तृत मूल-तंत्र युक्त है । यह मृदा आर्द्रता प्रतिबल स्थितियों के अनुकूल है । पत्तियाँ मध्यम से बडे आकार की, पालि रहित, गहरी हरी, उच्च आर्द्रता अंश एवं उच्च धारण क्षमतावाली हैं । वर्षाश्रित स्थितियों में यह 12-15 मे ट/हे/वर्ष की पैदावार देती है । यह उपजाति काली कपास मृदा के लिए संस्तुत की गई है ।

विशेष स्थितियों के लिए उन्नत शहतूत उपजातियाँ

गैर परंपरागत क्षेत्रों में रेशम उत्पादन फैलाने के लिए क्षारीयता, शुष्कता, अंतराफसल आदि विभिन्न स्थितियों के लिए उपयुक्त उपजातियों को विकासित करने की आवश्यकता है । दक्षिण भारत के अधिक क्षेत्र की मृदा क्षार प्रभावित है । नारियल बागान में अंतराफसल के रूप में शहतूत को उगाना कर्नाटक की बहुत पुरानी पद्धति है जिससे एकल फसल की तुलना में अधिक उपज मिलती है । इसी प्रकार स्रोत सीमित स्थितियों में (कम सिंचाई के साथ कम निवेश) उगने वाली शहतूत उपजातियाँ रेशम उत्पादन को अधिक लाभकर बनाती हैं । ऐसी स्थितियों के सहनशील अधिक पैदावार देने वाली शहतूत उपजातियाँ उगाना अत्यधिक लाभदायक है ।

1. सहाना

मध्यम प्रकार की शाखाएँ, तेज़ वृद्धि, कम फैलाव, छोटे पर्वों से युक्त गुलाबी धुँधली शाखाएँ इसके अभिलक्षण हैं । पत्तियाँ बडी, पालि रहित, मोटी, हृदयाकार, चमकदार एवं गहरी हरी होती हैं । यह उपजाति कम छायेदार में अधिक पत्ती क्षेत्रफल के साथ ठीक बढ़ती है । सिंचित स्थितियों में संस्तुत समग्र प्रणाली का प्रयोग करने से नारियल बागान की अंतराफसल (25 वर्ष से अधिक पुराने 8 मीटर अंतराल में लगाए नारियल पेड़) के रूप में यह उपजाति करीब 25-30 मे.ट. पत्ती/हे/वर्ष उत्पादित कर सकती है ।

1. ए.आर.-12 (क्षारीय प्रतिरोधी- 12)

ए.आर.12 क्षारीय मृदा में भी उच्च मूलोत्पत्ति क्षमता के साथ तेज़ बढ़ने वाली उपजाति है । झाडियाँ कम फैलती हैं, मध्यम प्रकार की शाखाएँ होती हैं जो छोटे पर्व वाली धुँधली होती हैं । पत्तियाँ पालि रहित, बडी, हृदयाकार, मोटी, गहरी हरी और थोडी खुरदरी होती हैं । यह उपजाति 8.0 - 9.4 पी.एच वाली क्षारीय मृदा के लिए उपयुक्त है और यह ऐसी मृदा में सिंचित स्थितियों में संस्तुत प्रणाली के प्रयोग से लगभग 25 मे.ट/हे/वर्ष की उपज देती है ।

2. आर-सी-1 (स्रोत प्रतिबंध-I)

मध्यम प्रकार की शाखाएँ, तेज बढ़ने, कम फैलने, छोटे पर्व वाली गुलाबी शाखाएँ आर.सी.-1 के अभिलक्षण हैं । पत्तियाँ बड़ी, अधिक पालियों से युक्त, मोटी, हृदयाकार, चमकदार एवं गहरी हरी होती हैं । कम उर्वरक एवं सिंचाई में भी यह उपजाति अच्छी तरह बढती है । सिंचित स्थितियों के लिए संस्तुत सिंचाई एवं उर्वरकों में 50% के अनुप्रयोग से यह 25-28 मे.ट पत्ती/हे/वर्ष की पैदावार देती है। अनुकूलनम स्थिति में इसकी पैदावार क्षमता 45-50 मे ट/हे/वर्ष है ।

4. आर.सी. - 2 (स्रोत प्रतिबंध-II)

मध्यम प्रकार की शाखाएँ, तेज बढ़ने, कम फैलने छोटे पर्व वाली गुलाबी शाखाएँ आर.सी.-2 के अभिलक्षण हैं । पत्तियाँ बड़ी, अधिक पालियों से युक्त, मोटी, हृदयाकार, चमकदार एवं गहरी हरी होती हैं । कम उर्वरक एवं सिंचाई में भी यह उपजाति अच्छी तरह बढ़ती है । सिंचित स्थितियों के लिए संस्तुत सिंचाई एवं उर्वरकों में 50% के अनुप्रयोग से यह 21-23 मे.ट पत्ती/हे/वर्ष की पैदावार देती है। अनुकूलनम स्थिति में इसकी पैदावार क्षमता 45-50 मे ट/हे/वर्ष है ।

शहतूत संवर्धन में नवीन प्रौद्योगिकियों का योगदान

आर एस कटियार एवं बी के यादव
केंद्रीय रेशम उत्पादन अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, मैसूर

1. शहतूत उत्पादन **:**

शहतूत एक बहुवर्षीय पौधा है । इसकी खेती रेशम उद्योग के लिए की जाती है । क्योंकि इसकी पत्तियाँ ही रेशम के कीड़ों (बोम्बिक्स मोरि) का मुख्य भोजन है । इसका उत्पादन उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में मुख्यत: अलैंगिक विधि से किया जाता है । अलैंगिक विधि से उत्पन्न पौधों का एक फायदा यह है कि हम पौधे का वास्तविक प्रारूप को बनाए रख सकते हैं जिससे पौधों में पैतृक गुण हमेशा विद्यमान रहते हैं। शहतूत को अलैंगिक विधि से उत्पन्न करने की मुख्यत: तीन विधियाँ हैं जैसे :

1. तने की कलमों द्वारा 2. भेट कलम द्वारा 3. दाब कलम द्वारा

सैद्धांतिक रूप से शहतूत की पौध पौधशाला में तना कलमों से पैदा की जाती है । क्योंकि यह एक साधारण और लागत प्रभावी विधि है । इसमें शहतूत के 6-10 महीने पुराने तने के मध्य भाग से 15-25 सेंमी लंबी कलम जिसमें 3-6 स्वास्थ ऑखें होती है को पौधशाला की क्यारियों में रोपण कर पौध उत्पन्न की जाती है । यह ध्यान रखना चाहिए कि सिंचित अवस्था की खेती के लिए कलमें 15-20 सेमी लंबी और 3-4 ऑखोंयुक्त होनी चाहिए । जबकि असिंचित अवस्था की खेती के लिए कलमों 20-25 सेंमी लंबी और 4-6 ऑखों वाली चुनते हैं ।

1.1.1 पौधशाला में क्यारियाँ बनना **:**

इन क्यारियों को हमेशा पानी के स्रोत के पास बनाना चाहिए । भूमि समतल और जल निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए । मिट्टी दोमट और अच्छे से 30-40 सेंमी गहराई तक जुताई (2-3 वार) करनी चाहिए । पत्थर, चट्टाने और बड़े ढेलो को निकाल दिया जाता है । इसके बाद 2.4 मी x 1.2 मी आकार की क्यारियाँ पंक्तियों में बना ली जाती है । क्यारियाँ तैयार करने के बाद लगभग 20 कि ग्रा गोबर की खाद/कम्पोस्ट/वर्मी कम्पोस्ट/क्याँरी के हिसाब से डालकर अच्छी तरह से मिट्टी में मिला दिया जाता है।

1.1.2 क्याँरियों में शहतूत कलमों का रोपण **:**

कलमों को लगाने से 2-3 दिन पहले क्यारियों में हल्की सिंचाई कर दी जाती है । पंक्ति से पंक्ति 20 सेंमी और कलम से कलम की दूरी 10 सेंमी रखना चाहिए । कलमों को 0.2% डाईथेन -एम 45 घोल में 10-15 मिनट तक उपचारित कर कलमों का रोपण 45^0 कोण अवस्था में किया जाता है । कलमों के रोपण के बाद सिंचाई कर दी जाती है । इसके बाद 4-5 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए । कलम रोपण के 40 दिन बाद पहली और 60 दिनों के बाद दूसरी निराई करनी चाहिए । दूसरी निराई के बाद 500 ग्राम यूरिया या सुफला प्रति क्यारी देने के बाद सिंचाई कर दी जाती है । कलम रोपण के चार महीने के बाद पौधों को सिंचित खेतों में रोपण किया जा सकता है । जब कि असिंचित भूमि में 1 वर्ष के बाद किया जाता है ।

2. पौधा रोपण की विधियाँ एवं प्रजातियाँ **:**

अतीत में कर्नाटक और उसके आसपास सिंचित अवस्था में शहतूत की खेती के लिए बहुत फसल ज्यामितियों का प्रचलन रहा है । तथा कनवा-2, एस-54 और एस-36 इत्यादि प्रचालित शहतूत की प्रजातियों का रोपण किया जाता था किन्तु वर्तमान में सर्वाधिक उत्पादन देने वाली वी-1 प्रजाति की फसल ज्यामिति (150+90) सेमी x 60 सेमी रखी गई है ।

वी -1 प्रजाति का बागान - फसल ज्यामिति (150+90) सेमी x 60 सेमी

इस फसल ज्यामिति से वी-1 प्रजाति से किसानों को 60 मी. टन प्रति है । प्रति वर्ष तक पत्ती का उत्पादन प्राप्त होता है । इसके साथ-साथ यंत्रीकरण द्वारा सस्य क्रिया करने में आसानी होती है । जिससे मज़दूरों की बढ़ती लागत एवं समय पर न मिलने की समस्या से कुछ हद तक निवारण किया जा सकता है । इसी प्रकार असिंचित शहतूत की खेती में दक्षिण भारत में झाड़ी विधि में 90 सेंमी x 90 सेंमी और पेड़ विधि में 180 सेंमी x 180 सेंमी का पौधारोपण किया जाता है । कलमों की जगह पौधे लगाने की सलाह दी जाती है । शहतूत की प्रजातियों में मैसूर (लोकल), एस-13 और एस-34 अधिक उत्पादन देती है। मगर जहाँ पर थोड़ी सी सिंचाई की व्यवस्था है आर सी-1 और आर सी-2 अति उत्तम प्रजातियाँ साबित होगी ।

2.1 मिट्टी **:**

शहतूत को कई प्रकार की मिट्टयों जैसे लाल दोमट, जलोढ़ और काली मिट्टी में उगाया जा सकता है । मिट्टी छिद्रपूर्ण, उपजाऊ, अच्छा जल निकास और अच्छे जलधारण गुणों के साथ-साथ 6.5 से 7.5 पीएच की होनी चाहिए । यदि मृदा का पी एच अधिक क्षारीय अथवा अम्लीय है तो नीचे दी गई तालिका में सुझाई गई चूना और जिप्सम के चूर्ण की मात्रा से उपचार किया जा सकता है ।

पीएच सीमा	चूना (मी. टन/हे)	जिप्सम (मे ट/हे)
3.5	12.5	--
4.5	8.75	--
5.5	5.00	--
7.4 -7.80	--	2.00
7.9 - 8.40	--	9.00
8.5 - 9.0	--	14.00

2.2 पौधरोपण सामग्री **:**

प्रत्येक कृषि जलवायु क्षेत्र के लिए अधिक उत्पादन वाली शहतूत की प्रजाति के रोपण के लिए चुनना चाहिए । 3-4 महीने पुरानी पौध या 6-10 महीने पुराने तने की कलमों को पौध रोपण सामग्री के रूप में उपयोग किया जा सकता है । इस बात की सिफारिश की जाती है कि कलमों की जगह पौध को रोपण के लिए प्रयोग करना चाहिए । कलमों के रोपण से उनके उगने में असफलता अधिक होती है ।

2.3 झाड़ी वृक्षारोपण **:**

2.3.1 भूमि की तैयारी **:**

मानसून आने के बाद ज़मीन को 40-45 सेंमी गहरी जुताई करनी चाहिए । जिसके लिए पहले डिस्क उसके बाद मोल्डबोर्ड हल से जुताई करते हैं । अंतत: कल्टीवेटर से गहरी जुताई करके खरपतवार रहित भूमि तैयार करते हैं । 20 मी. टन गोबर की खाद प्रति हे. के हिसाब से मिलाकर अंतिम रूप से पौधारोपण के लिए तैयार कर लेते हैं ।

2.3.2 पौधारोपण **:**

पौधारोपण का कार्य मानसून के मौसम में करना चाहिए जिससे शहतूत के बागान की अच्छी स्थापना होती है । सिंचित भूमि में युगल पंक्ति बनाकर पौधे का रोपण (150 + 90) सेंमी x 60 सेंमी फसल ज्यामिति के अनुसार करते हैं जबकि असिंचित भूमि में 35x35x35 सेंमी का गहरा गड्ढा 90x90 सेंमी की दूरी पर बनाते हैं । गड्ढों में 1:2 अनुपात में गोबर की खाद और मिट्ठी से भरकर पौधा या कलम 15 से मी दूरी पर त्रिकोण रूप में लगाते हैं । 3 कलमें या पौधा लगाने के बाद उनके चारों ओर मिट्ठी की अच्छी तरह से दबा दिया जाता है ।

2.3.3 स्थापना अवधि में देखभाल **:**

स्थापना अवधि के दौरान पौधा या कलमों के लिए किए गए वृक्षारोपण में सिंचाई 7-10 दिन के अंतराल पर नियमित रूप से करते रहना चाहिए। खरपतवारों को पौधारोपण के दो महीने के बाद हाथों से निकाल देना चाहिए । तीन महीने पुराने पौधारोपण में रासायनिक खादों की पहली मात्रा 50:50:50 किलोग्राम नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश प्रति हे. की दर से डालनी चाहिए । 6 महीने के वृक्षारोपण के बाद कुछ पत्तियाँ सावधानीपूर्ण तोड़ी जा सकती है । पत्तियाँ तोड़ने के बाद दूसरी निराई करें और 50 कि ग्रा नाइट्रोजन प्रति हे. की दर से पत्तियाँ तोड़ने के 3 सप्ताह के अंदर डालना चाहिए । इसके बाद 3 महीने के अंतराल से 2 बार पत्ती तुड़ाई की जा सकती है । पौधारोपण के 1 वर्ष पूर्ण होने पर नीचे से 25 सेंमी ऊपर पौधों को काट देते हैं। तत्पश्चात् ट्रैक्टर/पावर टिलर से अन्तर कृषि क्रिया की जाती है ।

2.3.4 खाद और रासायनिक उर्वरक का प्रयोग :

शहतूत के बागान से 15-20 वर्षों तक पत्तियों सहित तनों की पैदावार लेते हैं जिससे बड़ी मात्रा में पोषक तत्वों का ह्रास होता है । जिसे पूरा करने के लिए 20 मी. टन प्रति हे प्रति वर्ष सिंचित अवस्था में एवं 10 मी. टन प्रति हे. प्रति वर्ष असिंचित अवस्था में गोबर की खाद/कम्पोस्ट/सेरी वर्मी कम्पोस्ट मिट्टी में डालते हैं जिससे मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बनाए रखा जा सकता है । रासायनिक खाद वी-1 प्रजाति में 350:140:140 नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश किलोग्राम/हे/वर्ष - पॉच बराबर भागों में देते हैं । जबकि असिंचित अवस्था में 100:50:50 नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश -किलोग्राम/प्रति हे/वर्ष दो बार में दिया जाता है ।

2.3.5. ड्रिप विधि से सिंचाई **:**

शहतूत के बागान में 1.5 एकड़ इंच (85,000 गैलन/हे/सिंचाई) सिंचाई 6 से 7 दिनों के अंतराल से कूंड में की जाती है जिसे सतह की सिंचाई कहते हैं । इस विधि से पानी की अधिक जरूरत होती है । ड्रिप प्रणाली (माइक्रो टयूब) से सिंचाई करने से लगभग 50% पानी एवं मजदूरों की संख्या में बचत होती है । इस विधि को लगाने से सरकारी अनुदान भी मिलता है । साथ ही 50 प्रतिशत बचत वाले पानी से दूसरी फसलों की सिंचाई की जा सकती है ।

सतह की सिंचाई

ड्रिप सिंचाई

2.3.6 अंत**:**सस्य क्रिया **:**

इस प्रक्रिया को करने के लिए 100 मानव श्रमशक्ति प्रति फसल के हिसाब में 500 मानव श्रम शक्ति/हे/वर्ष की आवश्यकता होती है । यंत्रीकरण से कम खर्च में इस समस्या से निदान पाया जा सकता है । खरपतवार भूमि से पोषक तत्वों को अनावश्यक शोषण करते हैं । ग्लाईसिल जैसे खरपतवारनाशी का प्रयोग करके इससे नियंत्रण किया जा सकता है ।

2.3.7 शहतूत के तनों की कटाई **:** पहले शहतूत की पत्तियों को तोड़कर रेशमकीट पालन किया जाता था । अब तनों को सुबह काटकर सीधा रेशमकीट पालन में इसका प्रयोग किया जाता है ।

2.3.8 शहतूत बागान की छंटाई **:**

शहतूत एक जंगली पेड़ है जिसे रेशम उद्योग के लिए झाड़ी का रूप देकर सुविधाजनक ऊँचाई बनाए रखते हैं । इससे तीन विभिन्न ऊँचाईयों पर काट सकते हैं ।

i . कम ऊँचाई पर शहतूत की कटाई : 15-30 से मी
ii. मध्य ऊँचाई पर शहतूत की कटाई : 60-70 से मी
iii. अधिक ऊँचाई पर शहतूत की कटाई : 120-150 से मी

3. वृक्ष रूप में शहतूत का रोपण :

शहतूत को बंजर भूमि और असमतल भूमि में पेड़ के रूप में उगाया जा सकता है । यह एक तेजी से उगने वाला पेड़ है जिससे काफी मात्रा में पत्तियॉ मिलती हैं जिससे रेशमकीट पालन किया जा सकता है । शहतूत को पेड़ के रूप में उगाने के लिए कलमों या पौधों का सीधा रोपण किया जा सकता है इसको 1.5 x 1.5 मी या 2.4 x 2.4 मी या 3 x 3 मी के अंतर पर लगाया जा सकता है । पेड़ों को किसी खेत के चारों ओर भी उगाया जा सकता है । शहतूत के पेड़ों की ऊँचाई 150 से 180 सेंमी रखते हैं इसमें गोबर की खाद 5 मी टन साथ ही 2 मी टन वर्मी कम्पोस्ट प्रति हे प्रति वर्ष देते हैं । रासायनिक उर्वरक 50:25:25 नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश की किलोग्राम प्रति हे प्रति वर्ष 2 बार में डालते हैं ।

4. चॉकी शहतूत बागान

चॉकी रेशमकीट पालन रेशमकीट पालन का महत्वपूर्ण हिस्सा है । जिसमें पत्तियों की नमी 76 % से अधिक होनी चाहिए । इसमें कनवा-2, एस-36, वी-1 इत्यादि प्रजातियों का उपयोग किया जा सकता है।

4.1 प्रति वर्ष **8** फसलों की अनुसूची **:**

इस तरह के बागान में दो तरीके की फसल ज्यामिति को अपनाया जा सकता है जो मुख्यत: 90 x 90 सेंमी या (150 + 90) सेंमी x 60 सेंमी होती है । एक वर्ष की स्थापना के बाद पौधों को 20 से 25 सेंमी की ऊँचाई पर कटाई की जाती है । उसके 35 दिनों के बाद पत्तियों की पहली तोड़ाई लगभग 10 दिनों तक की जाती है । इसके बाद शीर्ष भाग को तोड़ दिया जाता है । इसके 25 दिनों के बाद दूसरी बार सूटलेट (प्ररोह) को 10 दिनों तक चॉकी पालन के लिए प्रयोग करते हैं । कुल 80 दिनों के बाद तनों को करीब 30 सेंमी की ऊँचाई से काट दिया जाता है । इस प्रकार चॉकी पत्तियों की 8 फसल प्रति वर्ष के हिसाब से उपलब्ध रहती है । 40 मी टन गोबर की खाद दो बराबर भागों में या 5 मी टन प्रति हे. प्रति फसल की दर से डालते हैं । साथ में 250:150:150 किलोग्राम प्रति हे. प्रति वर्ष नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश देते हैं । यदि प्रजाति वी-1 या एस-36 है तो 260 : 140 : 140 एन पी के किलोग्राम प्रति हे. प्रति वर्ष 8 बराबर भागों में डालते हैं । ऐसा करने से 29 मी टन प्रति हे. प्रति वर्ष उच्च गुणवत्ता की चॉकी पत्तियाँ प्राप्त होती है जिससे लगभग 1,60,000 रोगमुक्त बीज चकत्तें प्रति हे. प्रति वर्ष द्वितीय अवस्था तक रेशमकीट पालन किया जा सकता है ।

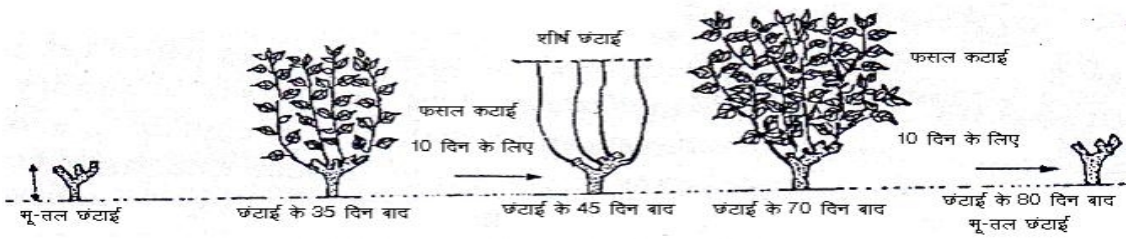

चॉकी शहतूत बागान की छंटाई अनुसूची (8फसल छंटाई प्रति वर्ष)

5. शहतूत की खेती में अंतरा फसल **:**

शहतूत के बागान में जो युगलपक्तियों के बीच में 150 से मी का खाली स्थान होता है उसमें अंतर फसल की खेती की जा सकती है जो निम्न प्रकार है ।

वी-1

एस-36

सूटलेट प्ररोह

i. खरीफ **:** मूँग, लोबिया, सोयाबिन, कुलथी, सेम, गाजर, मूली, धनिया और मेंथी ।

ii. रबी **:** चना, सोयाबिन, फूल गोभी, गॉठ गोभी, मटर, आलू, सलजम, पत्ता गोभी, मूली, मेंथी, पालक, मूँग , उड़द और लोबिया।

iii. जायद **(**गर्मी**) :** उड़द, मूँग और लोबिया इत्यादि ।

मूली

पालक

सेम

शहतूत के रोग एवं उनका नियंत्रण

दिनेश दत्त शर्मा
केंद्रीय रेशम उत्पादन अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, मैसूर

शहतूत के अधिक उत्पादन में रोग एक प्रतिबन्धक कारक होता है। चूँकि शहतूत का पौधा बहुवर्षीय होता है और लगातार एक ही खेत में फसलोत्पादन (5 फसल/वर्ष; 70 दिन/ फसल) करने से अनेक प्रकार के पर्णीय व भूमिगत रोगाणुओं के गुणन, आश्रय तथा जीवित रहने के लिए वातावरण सर्वाधिक अनुकूल हो जाता है जिससे ये रोगाणु (मुख्यत: कवक, जीवाणु व सूत्रकृमि) आदतानुसार विभिन्न प्रकार के पर्णीय व भूमिगत रोग फैलाने में सक्षम हो जाते हैं। सर्वेक्षणों से -ज्ञात हुआ है कि शहतूत के पर्णीय व भूमिगत रोगों के आक्रमण से शहतूत की पत्तियों की गुणवत्ता के अलावा उनकी पैदावार में भी औसतन 20-25 % तक की कमी आ जाती है। रोगों की सबसे अधिक प्रकोपता बरसात के दिनों में तथा सबसे कम गर्मियों के दिनों में देखी जा सकती है। रोगग्रस्त पत्तियों में खास तौर से प्रोटीन, कार्बोहाईड्रेट तथा नमी की अपेक्षाकृत कमी हो जाती है। चूंकि शहतूत पत्तियों में उपलब्ध प्रोटीन रेशमकीट में रेशम ग्रंथि का निर्माण करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है अत: रोगग्रस्त पत्तियों के खिलाने से रेशमकीटों की वृद्धि, कोसा भार, कोसा उत्पादन एवं गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अत: पत्तियों की पैदावार एवं गुणवत्ता बनाए रखने के लिए शहतूत के पर्णीय व भूमिगत रोगों पर नियंत्रण पाना परम आवश्यक है। इसी उद्देश्य से हानिकारक पर्णीय व भूमिगत रोगों के लक्षण, रोग संक्रमण कारक एवं उनके नियंत्रण के उपाय इस लेख में प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

शहतूत के पर्णीय रोग एवं उनका नियंत्रण

1. पर्ण चित्ती (लीफ स्पॉट): यह रोग *सरकोस्पोरा मोरीकोला* कवक द्वारा शहतूत पौधों में प्रत्येक मौसम में फैलता है परंतु वर्षाकाल में इसका प्रकोप सबसे अधिक होता है। इस रोग द्वारा पत्तियों की पैदावार में 10 % की हानि होती है। इस रोग के प्रारंभिक लक्षण पौधों की प्ररोह कटाई/छंटाई/पत्ती तुड़ाई के 30-40 दिनों पश्चात् देखे जा सकते हैं तथा 70 वें दिन इसकी प्रकोपता में अधिक बढ़ोत्तरी हो जाती है।

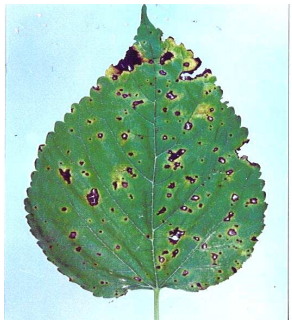

पर्ण चित्ती

लक्षण: प्रारंभिक अवस्था में पत्तियों के ऊपर भूरे एवं काले रंग के छोटे-छोटे धब्बे दिखाई पड़ते हैं बाद में ये धब्बे बड़े होकर एक दूसरे से परस्पर मिल जाते हैं एवं "शॉट होल" का निर्माण करते हैं। तत्पश्चात् पत्ती पीली पड़कर एवं मुरझाकर गिर जाती है ।

रोग संक्रमण कारक: यह वायुवाहित (एयर बोर्न) रोग है। अत: इसका संक्रमण वर्षा की बूंदों द्वारा कोनिडिया से होता है। 24-26^0 सें. ग्रे. तापमान, 70-80 % सापेक्षिक आर्द्रता इस रोग के लिए अत्याधिक उपयुक्त है।

नियंत्रण के उपाय: 0.2 % बेविस्टीन (कार्बनडेन्जिम 50 % डब्ल्यू पी) के जलीय घोल का छिड़काव (2 ग्रा. बेविस्टीन को 1 ली. पानी में मिलाने से 0.2 % का घोल प्राप्त होता है) पौधों के ऊपर करें। **सुरक्षा अवधि:** 2-3 दिन।

2. चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिलड्यू): यह रोग *फाइलेक्टिनिया कोरिलिया* कवक द्वारा फैलता है तथा वर्षा एवं शीतकाल में बहुधा देखा जाता है। इसका प्रकोप शीतकाल (नवम्बर से फरवरी) में सबसे अधिक होता है तथा पत्तियों की पैदावार में 5-10 % की कमी आ जाती है। इसके प्रारंभिक लक्षण पौधों की प्ररोह कटाई/छंटाई/पत्ती तुड़ाई के 40 दिनों पश्चात् देखे जा सकते हैं तथा 70 वें दिन इसकी प्रकोपता अत्यधिक बढ़ जाती है।

लक्षण: पत्ती की पिछली/निचली सतह पर सफेद चूर्ण की तरह के धब्बे कहीं-कहीं दिखाई देते हैं, बाद मे ये धब्बे पूरी पत्ती पर फैल जाते हैं तथा कुछ दिनों बाद भूरे काले रंग के हो जाते हैं। अत्यधिक रोगावस्था में पत्तियाँ पौधों से टूट कर गिर जाती हैं।

चर्णिल आसिता

रोग संक्रमण कारक: यह वायुवाहित रोग है। अत: इसका संक्रमण वायु के प्रवाह से कोनिडिया द्वारा होता है। सापेक्षिक आर्द्रता 75-80 % के बीच तथा 24-28^0 सें. ग्रे. तापमान इस कवक के गुणन के लिए सर्वाधिक अनुकूल है।

नियंत्रण के उपाय: 0.2 % केरेथेन (डाईनाकेप 30 % ई सी)/ इन्डोफिल एम-45 (मैनकोजेब 75 % डब्ल्यू पी) के जलीय घोल का छिड़काव पौधों के ऊपर करें। **सुरक्षा अवधि:** 2-3 दिन।

3. पर्ण किट्ट (लीफ रस्ट): यह रोग *सेरोटिलियम फिसी* कवक द्वारा होता है तथा इसका प्रकोप वर्षा एवं शीतकाल में सबसे अधिक तथा ग्रीष्म काल में सबसे कम फैलता है। परिपक्व पत्तियाँ इस रोग से आमतौर पर प्रभावित होती हैं तथा पत्तियों की पैदावार में 8-12 % की कमी आ जाती है। इस रोग के प्रारंभिक लक्षण पौधों की प्ररोह कटाई/छंटाई/पत्ती तुड़ाई के 45 - 50 दिनों पश्चात् पत्तियों पर देखे जा सकते हैं तथा 70 वें दिन इसकी प्रकोपता अधिक बढ़ जाती है।

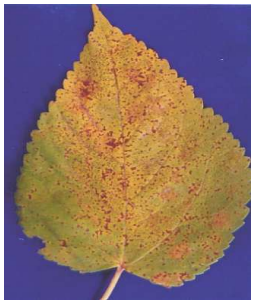

पर्ण किट्ट

लक्षण: साधारणत: परिपक्व पत्तियों पर आलपिन के सिर के आकार के छोटे-छोटे काले भूरे रंग के दाग दिखाई देते हैं। अत्यधिक रोगावस्था में पत्तियाँ पीली होकर पौधों से अलग हो जाती हैं।
रोग संक्रमण कारक: यह वायुवाहित रोग है इसका प्रकीर्णन वायु एवं वर्षा की बूंदों द्वारा यूरीडो कोनिडिया से फैलता है। 18-22^0 सें. ग्रे. तापमान एवं 60-70 % सापेक्षिक आर्द्रता इस रोग के प्रसार के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है।
नियंत्रण के उपाय: 0.2 % कवच (क्लोरोथालोनिल 75 % डब्लयू पी) के घोल का छिड़काव पौधों के ऊपर करें।
सुरक्षा अवधि: 2-3 दिन।

4. पर्ण विनाश (लीफ ब्लाइट): यह रोग *फ्यूजेरियम पैलीडोरोजियम*, *आल्टरनेरिया अल्टरनेटा* तथा *हैलमिन्थोस्पोरियम ट्रेटामेरा* नामक कवकों से उत्पन्न होता है तथा इसका अधिक प्रकोप वर्षा एवं ग्रीष्म काल में देखा जा सकता हैं । इस रोग द्वारा पत्तियों की पैदावार में 5-10 % की कमी आ जाती है। इसके प्रारंभिक लक्षण पौधों की प्ररोह कटाई/छंटाई/पत्ती तुड़ाई के 45 दिनों पश्चात् देखे जा सकते हैं तथा 70 वें दिन इसकी प्रचण्डता अत्यधिक हो जाती है।

पर्ण विनाश

लक्षण: सामान्यत: इन कवकों द्वारा सबसे पहले पत्तियों के किनारे सड़ने या सूखने अथवा जलने लगते हैं। धीरे-धीरे सड़न पूरी पत्ती पर फैल जाती है जिससे पत्ती सूखकर काली अथवा भूरे काले रंग की होकर पौधे से झड़ जाती हैं। इसका प्रभाव पत्तियों के अलावा पौधों की शाखाओं पर भी पड़ता है। शाखाओं पर अनियमित भूरे या काले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। बाद में ये धब्बे एक दूसरे से परस्पर मिल जाते हैं और शाखाओं की छाल फटनी शुरु हो जाती है जिससे शाखा सूखकर गिर जाती है।
रोग संक्रमण कारक: वायुवाहित रोग होने के कारण इसका संक्रमण वर्षा की बूंदों द्वारा कोनिडिया से होता है। 28-35^0 सें. ग्रे. तापमान तथा 40-60 % आर्द्रता इस रोग के लिए अत्याधिक उपयुक्त है।
नियंत्रण के उपाय: 0.2 % इन्डोफिल एम-45 (मैनकोजेब 75 % डब्ल्यू पी) के जलीय घोल का छिड़काव पौधों के ऊपर करें।
सुरक्षा अवधि: 2-3 दिन

5. जीवाणु विनाश (बेक्टिरियल ब्लाइट): इस रोग का प्रकोप *सूडोमोनास सिंरिंजेई पी वी मोरी/ जैनथोमोनास कम्पेस्ट्रिस पी वी मोरी* जीवाणु द्वारा प्राय: वर्षाकाल के दौरान एवं उसके पश्चात् होता है जब वातावरण में अधिक आर्द्रता होती है। इस रोग के प्रकोप से पत्तियों की पैदावार में 5-8 % की हानि होती है। इस रोग के प्रारंभिक लक्षण पौधों की प्ररोह कटाई/छंटाई/पत्ती तुड़ाई के 35 दिनों पश्चात् देखे जा सकते हैं तथा 70 वें दिन इसकी प्रकोपता अधिक हो जाती है।

बेक्टिरियल ब्लाइट

लक्षण: पत्तियों की सतह पर भूरे काले रंग के तिरछे एवं अनियमित आकार के पानी से सने व चमकीले धब्बे दिखाई देते हैं जिससे पत्ती सिकुड़कर पौधों से झड़ जाती है।
रोग संक्रमण कारक: इस रोग के फैलने का प्राथमिक स्रोत संक्रमित मृदा तथा दूसरा स्रोत कृषि उपकरण हैं। 28-35^0 सें. ग्रे. तापमान तथा 80 % से अधिक आर्द्रता इस रोग के लिए सर्वाधिक अनुकूल है।
नियंत्रण के उपाय: 0.2% इन्डोफिल एम-45 (मैनकोजेब 75% डब्ल्यू पी)/प्रतिजैविक स्ट्रेप्टोसाइकिलिन के जलीय घोल का छिड़काव पौधों के ऊपर करें। **सुरक्षा अवधि:** 2-3 दिन

रोगों की तीव्रता का पूर्वानुमान लगाना

शहतूत के प्रमुख पर्णीय रोगों में से पर्ण चित्ती (लीफ स्पॉट) एवं पर्ण किट्ट (लीफ रस्ट) अत्यंत खतरनाक होते हैं । अत: इन रोगों की तीव्रता का पूर्वानुमान लगाने के लिए अनेकों पर्यावरणी कारकों पर शोध कार्य किया गया और सफलता प्राप्त हुई । इन दोनों रोगों की तीव्रता का पूर्वानुमान निम्न प्रकार से लगाया जा सकता है ।

1. लीफ स्पॉट की तीव्रता का पूर्वानुमान लगाना: इस रोग की तीव्रता का पूर्वानुमान निम्नलिखित सूत्र से लगाया जा सकता है ।

रोग की तीव्रता का पूर्वानुमान (%)= 7.09 + 0.59 (छं प अ) - 1.07 (उ ताप) (आर^2 मान 0.86 है) ।
जहाँ पर: छं प अ = छंटनी के पश्चात फसल की अवधि (दिन में); उ ताप = उच्चतम तापमान
(अनुकूल मान = छ प अ : 35-70 दिन, उ. ताप: 22-30^0 सें ग्रे)

उदाहरण: यदि छ प अ = 48 दिन व उ ताप = 25^0 सें ग्रे है तो रोग की तीव्रता निम्न प्रकार से ज्ञात कर सकते हैं ।

रोग की तीव्रता का पूर्वानुमान (%) = 7.09 + 0.59** (छं प अ) - 1.07 (उ तापमान)
= 7.09 + 0.59 (48) - 1.07 (25)
= 7.09 + 28.32 - 26.75
= 35.41 - 26.75
= 8.68%

यहाँ रोग की तीव्रता 5.0 % से अधिक है तो सुझाई गई नियंत्रण विधि को अपनाना चाहिए अन्यथा रोग की तीव्रता महामारी का रूप ले सकती है ।

2. लीफ रस्ट रोग की तीव्रता का पूर्वानुमान लगाना : इस रोग की तीव्रता का पूर्वानुमान निम्नलिखित सूत्र से लगाया जा सकता है ।

रोग की तीव्रता का पूर्वानुमान (%) = -66.18+0.80** (छं प अ) + 0.45 (औ आर्द्रता) (आर^2 मान 0.95 है) ।
जहाँ पर: छं प अ = छंटनी के पश्चात फसल की अवधि (दिन में); औ आर्द्रता = औसतन आर्द्रता
(अनुकूल मान = छ प अ : 35-70 दिन, औ आर्द्रता : 68.9-84.4%)

उदाहरण: यदि छ प अ = 50 दिन तथा औसतन आर्द्रता = 75% है तो रोग की तीव्रता निम्न प्रकार से ज्ञात कर सकते हैं।
रोग की तीव्रता का पूर्वानुमान (%) = -66.18+0.80** (छं प अ) + 0.45 (औ आर्द्रता)
= -66.18 + 0.80 (50) + 0.45 (75)
= -66.18 + 44 + 33.75
= -66.18 + 77.75
= 11.75%

यदि रोग की तीव्रता 5.0 % से अधिक है अत: रोग की महामारी से बचने के लिए सुझाई गई नियंत्रण विधि को अपनाना चाहिए ।

कवकनाशी एवं उनका उपयोग

कवकनाशी जहरीले रासायनिक पदार्थ होते हैं जो कवक/फफूंद को मारने में सक्षम होते हैं । ये दो प्रकार के होते हैं - सर्वांगी व संपर्क कवकनाशी । सर्वांगी कवकनाशी वे होते हैं जिनका उपयोग करने से पौधे के पूरे भाग (पत्ती, तना व जड़) में घुल मिलकर अपना प्रभाव दिखाते हैं यदि रोगाणु पौधे के किसी भी हिस्से को अपना भोजन बनाएं वे उसको ग्रहण करते ही मर जाते हैं। संपर्क कवकनाशी वे होते हैं जब रोगाणु जहर के दायरे में आएं और उस भाग को ग्रहण करने से उसकी मृत्यु होती है। इस प्रकार के कवकनाशी पौधे के पूरे भाग में अपना प्रभाव नहीं दिखाते। उदाहरण के लिए बेविस्टिन एक सर्वांगी कवकनाशी है तथा इन्डोफिल एम-45 एक संपर्क कवकनाशी है। प्रत्येक कवकनाशी के दो नाम होते हैं - व्यापारिक व सामान्य नाम । जब कोई कंपनी/ फर्म कवकनाशी को उसकी बिक्री के लिए नाम रखे उसे व्यापारिक नाम कहते हैं जबकि सामान्य नाम

कवकनाशी में विद्यमान जहर (सक्रिय घटक) व उसकी मात्रा को दर्शाता है । उदाहरण के लिए बेविस्टीन व्यापारिक नाम है तथा 50% कार्बनडेन्जिम डब्लू पी इसका सामान्य नाम है ।

कवकनाशी के छिड़काव के लिए निर्धारित मात्रा : रोगों की प्रकोपता के आधार पर जैसे कम, मध्यम तथा तीव्रता के अनुसार नियंत्रण उपायों को अपनाना चाहिए । प्रति एकड़ शहतूत के बगीचे के लिए 150-180 लीटर पीड़कनाशी घोल की आवश्यकता होती है । प्ररोह कटाई/छंटाई/पत्ती तुड़ाई के 35-45 दिनों तक 160-170 ली/एकड़ एवं 55-70 दिनों तक 170-180 ली/एकड़ घोल का प्रयोग करें । यदि रोग की प्रचण्डता बहुत अधिक हो तो दो छिड़काव करने चाहिए । प्रथम छिड़काव रोग के प्रारंभिक लक्षण नजर आते ही कर देना चाहिए तथा दूसरा छिड़काव 8-10 दिनों पश्चात् करना चाहिए। छिड़काव धूप में न कर शाम के समय या शीतल बेला में करना चाहिए।

कवकनाशी के छिड़काव के पश्चात् सुरक्षा अवधि: प्रत्येक कवकनाशी जहरीला होता है यदि इसकी सुरक्षा अवधि ज्ञात नहीं है तो वह रेशमकीट के लिए हानिकारक हो सकता है क्योंकि रेशमकीट जहर के प्रति अति संवेदनशील होता है । कभी-कभी कवकनाशी की सुरक्षाकाल अवधि ज्ञात नहीं होती है तो उसकी अस्थायी रूप से सुरक्षा अवधि ज्ञात की जा सकती है । प्रत्येक कवकनाशी के पैकेट पर तिकोना निशान होता है । इस तिकोने निशान पर ऊपर की तरफ स्लोगन लिखे होते हैं तथा नीचे लाल, पीले, नीले व हरे रंग दिखाई देते हैं । इन रंगों के अनुसार कवकनाशियों को तीन वर्गों में बांट लेते हैं । **प्रथम वर्ग** में लाल व पीले रंग के तिकोने निशान होते हैं और इन कवकनाशियों में उच्च कोटि का जहर होता है । अतः इसके लिए सुरक्षा अवधि 15 दिन की रखनी चाहिए । **द्वितीय वर्ग** में नीले रंग के तिकोने निशान होते हैं जिनमें मध्यम कोटि का जहर होता है । अतः इसके लिए सुरक्षा अवधि एक सप्ताह की रखनी चाहिए । **तृतीय वर्ग** मे हरे रंग के तिकाने निशान होते हैं । इस तरह के कवकनाशियों में निम्न/अल्प कोटि का जहर होता है । अतः इसके लिए सुरक्षा अवधि 3 दिन ही पर्याप्त है ।

तिकोने निशान दर्शाते हुए कवकनाशी के पैकेट

शहतूत के भूमिगत रोग एवं उनका नियंत्रण

1. नर्सरी के दौरान होने वाले रोग: शहतूत पौधों को मुख्यतः कलमों के रोपण द्वारा नर्सरी में या फिर सीधे ही बगीचों में उगाया जाता है। ये कलमें जब भूमि में रोपित की जाती हैं तो विभिन्न प्रकार के भूमिगत रोगाणु इन पर आक्रमण करना शुरू कर देते हैं, परिणामस्वरूप कलमें रोग ग्रस्त हो जाती हैं और उनका स्फुटन नहीं हो पाता। सामान्य तौर पर तने का फोड़ा, कलमों का सड़ना, कॉलर सडन तथा डाई-बैक बीमारियाँ नर्सरी के दौरान हानि पहुँचाती हैं जिनमें पहली दो बीमारियाँ कलमों के अंकुरण को प्रभावित करती है तथा अन्त की दो बीमारियाँ कलमों से निकले पौध को नुकसान पहुँचाती है जिससे नर्सरी में करीब 30-40 % कलमें/पौध की मृत्यु हो जाती है। इन सभी रोगों का प्रकोप ग्रीष्म व वर्षा काल ऋतुओं में अधिक होता है। इन रोगों के लक्षण तथा नियंत्रण के उपाय निम्नलिखित हैं।

(क) तने का फोड़ा (स्टेम केंकर): यह रोग *बोट्रिओडिप्लोडिया थियोब्रोमी* कवक के संक्रमण से फैलता है। इस रोग में रोपित कलमों की छाल के ऊपर हरे-कालें रंग के फोड़े बनने शुरू हो जाते हैं जिससे उनका अंकुरण नहीं हो पाता तथा कलमें मर जाती है।

(ख) कलमों का सड़ना (कटिंग रोट): यह रोग *फ्यूजेरियम सोलेनाई* द्वारा होता है। इसके आक्रमण से रोपित कलमों की छाल सड़-गल जाती है और वह अंकुरित नहीं हो पाती तथा सड़कर मर जाती हैं।

(ग) कॉलर-सड़न (कॉलर-रोट): यह रोग *फोमा सोरधीना/फोमा मोरोरम* द्वारा होता है। इसमें भूतल के निकट रोपित कलमों की छाल सड़ जाती है जिसकी वजह से पौधा मुरझाकर सूख जाता है।

(घ) डाई-बैक: यह रोग *बो. थियोब्रोमी* द्वारा फैलता है। इस रोग में पौध का शीर्ष भाग मुरझाने लगता है जो धीरे-धीरे नीचे की तरफ बढ़ता है जिससे पौध की पूरी टहनी मुरझाकर सूख जाती है।

तने का फोड़ा

कलमों का सड़ना

कॉलर-सड़न

डाई-बैक

रोग संक्रमण कारक: इन रोगों के फैलने का प्राथमिक स्रोत संक्रमित मृदा व कृषि उपकरण है तथा दूसरा स्रोत पहले से ही संक्रमित कलमों का नर्सरी में बिना उपचार के रोपण करना है। तापमान 28 - 30^0 सें ग्रे, 40% से कम मृदा की आर्द्रता तथा 5-10 मृदा का पी.एच. मान रोग की तीव्रता को बढ़ाने में सहायक होते हैं।
नियंत्रण के उपाय: नर्सरी के दौरान होने वाले सभी रोगों को निम्नलिखित विधियों द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है ।

(क) रासायनिक विधि: कलमों को सर्वप्रथम 0.1% इन्डोफिल एम-45 के जलीय घोल (1 ग्रा/लीटर) में लगभग आधे घण्टे तक भिगोए रखें। तत्पश्चात् इन कलमों को क्यारियों में 8-10 सें.मी. की दूरी पर रोपित करें तथा कतार से कतार की दूरी 15 सें मी तक रखें। कलमों के रोपण के बाद सिंचाई करना अति आवश्यक है।

(ख) एकीकृत नियंत्रण: इस विधि में 0.1% इन्डोफिल एम-45 के जलीय घोल में कलमों को भिगोएँ तथा मृदा में जैव कवक नाशक **नर्सरी -गार्ड** के मिश्रण का उपयोग करना चाहिए।

प्रयोग करने की विधि: एक कि.ग्रा. **नर्सरी -गार्ड** को 50 कि. ग्रा. गोबर की खाद में अच्छी तरह से मिलाकर उसमें 10 ली. पानी मिलाएँ। इस मिश्रण को एक सप्ताह के लिए किसी छायादार स्थान पर रख दें, इससे सूक्ष्म जीवों की संख्या में बढ़ोत्तरी होती है। एक सप्ताह बाद इस मिश्रण को 2 कि. ग्रा./मी ^{2} की दर से नर्सरी क्यारियों पर बुरक कर मिट्टी में अच्छी तरह से मिला दें। मिश्रण को मिलाने के पश्चात् कलमों को नर्सरी क्यारियों पर रोपित कर दें। कलमों के रोपण से पहले उनको 0.1% इन्डोफिल एम-45 के घोल में आधे घंटे तक भिगोए रखें।

आर्थिक लाभ:यह विधि वातावरणीय अनुकूल तथा प्रदूषण रहित है। इस विधि को अपनाने से कृषकों के एक रुपया खर्च करने से उन्हें 6 रुपये तक की आय प्राप्त होती है।

2. मूल गांठ रोग: यह रोग *मेलोईडोगाइन इन्कोगनिटा* सूत्रकृमि द्वारा होता है तथा इसकी प्रकोपता बहुधा शहतूत की सिंचित वाटिकाओं एवं दोमट मिट्टी में होती है। यह एक अत्यंत ही खतरनाक रोग है और प्रत्येक मौसम में होता है। इस रोग की जानकारी बिना पौधा उखाडे नहीं लगाई जा सकती है। इस रोग से पत्तियों की गुणवत्ता के अलावा उनकी पैदावार में लगभग 15 % से अधिक की कमी आती है। इस सूत्रकृमि की चार प्रजातियाँ पायी जाती हैं उनमें से प्रजाति-2 शहतूत पौधों में मूल गांठ रोग उत्पन्न करती है।

मूल गांठ रोग

लक्षण एवं क्षतिग्रस्त स्वरूप: सूत्रकृमि के संक्रमण से जड़ों पर गांठों का बनना शुरू हो जाता है। अत्यधिक रोगावस्था में ये गांठें पूरी जड़ों पर फैल जाती हैं जिससे जड़ों में संचित करने की क्षमता में कमी आने से पत्तों के किनारे निर्जीव तथा पीले हो जाते हैं और पौधों की वृद्धि रुक जाती है जिससे पौधा बौना रह जाता है। सूत्रकृमि के संक्रमण से संचालक ऊतक (फ्लोएम व जाइलम) पूरी तरह अस्त-व्यस्त हो जाते हैं जिससे प्रभावित जडें पानी तथा खनिज पर्दाथों को भूमि से संचित कर पौधों के ऊपरी भाग तक पँहुचाने में असमर्थ हो जाती हैं और पौधों के क्रियात्मक विकास में कमी आ जाती है।

रोग संक्रमण कारण: इस रोग का प्राथमिक स्रोत संक्रमित मृदा व कृषि उपकरण हैं। रोगग्रस्त पौधा, कुछ खरपतवार एवं शहतूत के साथ अन्य संवेदनशील फसलों की खेती करना इस रोग के द्वितीय स्रोत हैं जिनसे रोग के फैलने की संभावनाएँ होती हैं। 15-30^0 से.ग्रे. तापमान, 40-60% मृदा की आर्द्रता एवं 4-8 पी-एच.सूत्रकृमि के विकास के लिए सर्वाधिक उपयुक्त हैं।

नियंत्रण के उपाय: इस रोग के नियंत्रण के उपाय निम्नलिखित हैं।

(क) भौतिक विधि: रोगग्रस्त शहतूती वाटिकाओं के पौधों को उखाडकर उनकी गहरी जुताई करके कुछ महीने कड़ी धूप में खुला छोड़ने से सूत्रकृमि के अण्डे व लारवे मर जाते हैं। तत्पश्चात् उनमें नए पौधों को रोपित करना चाहिए। शहतूत बागानों में उग आए खरपतवारों को फूल आने से पहले ही उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए।

(ख) संवर्धन व रासायनिक विधियाँ: नीम की खली (2 टन/हे/वर्ष) अथवा फ्यूराडोन (40 कि.ग्रा./हे/वर्ष) को चार बराबर भागों में विभक्त करके शहतूत की कतारों के बीच एक फुट गहरी नाली बनाकर कृषि क्रियाओं के दौरान उनमें डालना चाहिए। नालियों को मिट्टी से बन्द करके उनमें सिंचाई का प्रबंधन करें। फ्यूराडोन डालने के पश्चात् पत्तियों को रेशमकीट के पोषण के लिए 40-45 दिनों के बाद इस्तेमाल करना चाहिए।

(ग) एकीकृत नियंत्रण: यदि रोग की प्रचण्डता वाटिकाओं में अधिक हो तो *वरटीसिलियम क्लेमाइडोस्पोरियम* से बना **बायोनिमा** तथा नीम की खली को साथ मिलाकर प्रयोग करने से इस रोग को भली-भाँति नियंत्रित किया जा सकता है।

प्रयोग करने की विधि: एक कि.ग्रा. **बायोनिमा** को 200 कि.ग्रा. गोबर की खाद तथा 24 कि.ग्रा. नीम की खली में अच्छी तरह से मिलाकर मिश्रण तैयार करें (1000 पौधों के लिए पर्याप्त है)। इस मिश्रण को एक सप्ताह के लिए किसी छायादार स्थान पर 30-32 ली पानी मिलाकर रख दें। एक सप्ताह बाद, जड़ों के आस-पास की मिट्टी को 15 से.मी. गहरा खोदकर इस मिश्रण को 200 ग्रा. प्रति पौधे के हिसाब से जड़ों के चारों तरफ छितरा दें तथा गड्ढे को मिट्टी से भर दें। प्रति वर्ष 3 खुराक चार महीनों के अन्तराल पर कृषि क्रियाओं के दौरान दें। मिश्रण डालने के तुरंत पश्चात् सिंचाई करना अति आवश्यक है।

आर्थिक लाभ: यह प्रौद्योगिकी वातावरणीय अनुकूल तथा प्रदूषण रहित है। इस विधि में कृषकों के एक रुपया खर्च करने से उन्हें तीन रुपये तक की आय प्राप्त हो सकती है एवं सुरक्षाकाल अवधि भी कोई नहीं है।

(ग). नीमाहारी - मूल गांठ रोग के नियंत्रण हेतु एक नवीन औषधि: रसायनों का प्रयोग कम करने के लिए सी एस आर टी आई, मैसूर ने एक नई औषधि नीमाहारी (हर्बल्स 75% व रसायन 25%) का निर्माण किया गया है । यह औषधि शहतूत के मूल गांठ रोग के विरूद्ध अधिक प्रभावशाली पाई गई है जो 80-85% रोग की तीव्रता को नियंत्रित करती है ।

प्रयोग करने की विधि: रोगग्रस्त शहतूत बागान में नीमाहारी को @ 30 किग्रा/हे की दर से 300 किग्रा गोबर की खाद/कम्पोस्ट खाद में मिलाकर शहतूत की कतारों के बीच 15-20 सें मी गहरी नाली बनाकर कृषि क्रियाओं के दौरान उनमें डालना चाहिए। नालियों को मिट्टी से बंद करके उनमें सिंचाई का प्रबंध करना चाहिए । यदि रोग की प्रकोपता अत्यधिक तीव्र हो (100 गांठ से अधिक/पौधा) तो नीमाहारी को वर्ष में तीन बार प्रयोग करना चाहिए (दूसरी खुराक पहली खुराक के 70-80 दिनों पश्चात् तथा तीसरी खुराक दूसरी खुराक के 140-150 दिनों पश्चात डालनी चाहिए)। यदि रोग की तीव्रता मध्यम हो (100 गांठ से कम/पौधा) तो नीमाहारी को वर्ष में दो बार ही प्रयोग करें (दूसरी खुराक पहली खुराक के 70-80 दिनों पश्चात् डालनी चाहिए)।

आर्थिक लाभ: यह औषधि वातावरणीय अनुकूल तथा प्रदूषण रहित है तथा कृषकों के एक रुपया खर्च करने से उन्हें 2.20 रु तक की आय प्राप्त होती है।

3. मूल विगलन रोग: शहतूत में पाए जाने वाले विभिन्न भूमिगत रोगों में मूल विगलन एक अत्यंत ही खतरनाक रोग है जोकि *राइजोक्टोनिया बेटेटिकोला* (= *मेक्रोफोमिना फैजियोलीना*), *फ्यूजेरियम सोलेनाई*, *फ्यू. आक्जीस्पोरियम* तथा *बो. थियोब्रोमी* द्वारा फैलता है। इस रोग का प्रकोप अधिकतर वी-1 में देखा गया है जिससे औसतन 20-30 % पौधों की मृत्यु हो जाती है एवं पत्तियों के उत्पादन में 14% से अधिक की हानि होती है। सर्वप्रथम यह रोग वाटिकाओं में कुछ ही पौधों में फैलता है तथा धीरे-धीरे पूरी वाटिकाओं में फैल जाता है। किसी भी प्रकार की मिट्टी/भूमि इस रोग के लिए अनुकूल है तथा किसी भी मौसम में इसका प्रकोप हो सकता है।

मूल विगलन रोग के पर्णीय लक्षण

मूल विगलन रोग के भूमिगत लक्षण

लक्षण एवं क्षतिग्रस्त स्वरूप: मूल विगलन रोग से प्रभावित पौधों की पत्तियां सर्वप्रथम असमय ही मुरझा कर काली/ पीली पड़कर पौधों से झड़ जाती हैं। शाखाओं की नई वृद्धि मंद पड़ती चली जाती है। जड़ों की बाहरी त्वचा (छाल) का सड़ना शुरू होता है तत्पश्चात प्राथमिक व द्वितीय जड़ संस्थान सडने लगते हैं। रोग की तीव्रता बढ़ने से जड़े पूर्णतया सड़-गल जाती हैं और पिलपिली होकर काले रंग की हो जाती हैं। भूमि में पौधों की पकड़ ढीली पड़ जाती है जिसके फलस्वरूप उनकी की मृत्यु हो जाती है।

रोग संक्रमण कारक: इसका प्राथमिक स्रोत संक्रमित मृदा व कृषि उपकरण हैं। वाटिकाओं में अधिक पानी का इकट्ठा होना एवं रोगग्रस्त पौधा रोग के फैलने के द्वितीय कारक हैं। मृदा का तापमान 26-35^{0} से ग्रे, 40% से कम आर्द्रता तथा मृदा में जैव पदार्थों की अत्यधिक कमी इस रोग के रोगाणुओं के लिए अधिक अनुकूल है ।

नियंत्रण: इस रोग का नियंत्रण निम्नलिखित विधियों द्वारा किया जा सकता है ।

(क) रासायनिक विधि: इस विधि में कवकनाशी इन्डोफिल एम-45 (मेनकोजेब 75 % डब्ल्यू पी) का प्रयोग किया जाता है।

प्रयोग करने की विधि: ज्योंही पत्तियों पर मूल विगलन रोग के प्रारंभिक लक्षण दिखाई दें, रोगग्रस्त पौधे के आस-पास की मिट्टी को 15 सें मी गहरा खोदकर उसमें 10 ग्राम इन्डोफिल एम-45 प्रति पौधे के हिसाब से बुरक दें और गड्ढे को ताजी मिट्टी से भर कर तुरंत सिंचाई करें। अत्यधिक रोगग्रस्त या मरे हुए पौधों को जड़ सहित उखाड़कर जला दें। तत्पश्चात् एक फुट गहरा गड्ढा खोदकर उसमें से जड़ों का सड़ा-गला हिस्सा (ठूँठ) भी पूर्णतया निकाल दें। उसके उपरान्त 10 ग्रा. इन्डोफिल एम-45 प्रति गड्ढे का बुरकाव करें तथा नई पौध को लगा कर गड्ढे को ताजी मिट्टी से भरकर सिंचाई करें। नई पौध को लगाने से पहले उसको 0.1 % इन्डोफिल एम-45 घोल में 30 मिनट के लिए डुबो दें । इन्डोफिल एम-45 की वर्ष में 4 खुराकें 3 महीनों के अन्तराल पर दें। इसकी सुरक्षा काल अवधि 8 दिनों तक की आँकी गई है।

(ख) एकीकृत विधि: इस विधि में इन्डोफि ल एम-45 एवं टाल्क पाउडर से निर्मित जैव फफूंदनाशी, **रक्षा** (*ट्राइकोडरमा हारजिआनम*) का भूमि में प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग रोग की प्रचण्डता अधिक होने पर ही करना चाहिए।

प्रयोग करने की विधि: जैसे ही पत्तियों पर रोग के लक्ष्ण दिखाई दें, रोग ग्रस्त पौधे के आस-पास की मिट्टी को 15 से.मी. गहरा खोदकर उसके चारों तरफ **रक्षा** का मिश्रण 500 ग्रा/पौधे के हिसाब से बुरक दें तथा गड्ढे को ताजी मिट्टी से भर कर सिंचाई करें। **रक्षा का मिश्रण** तैयार करने के लिए 1 कि ग्रा **रक्षा** को 50 कि.ग्रा. गोबर की खाद तथा 10 कि ग्रा नीम की खली में अच्छी तरह से मिला दें (120 पौधों के लिए पर्याप्त है)। इस मिश्रण को एक सप्ताह के लिए किसी छायादार स्थान पर 10-12 ली. पानी डालकर रख दें। अत्यधिक संक्रमित या मरे हुए पौधों को जड़ सहित उखाड़ कर जला दें। तत्पश्चात् एक फुट गहरा गड्ढा खोदकर उसमें 10 ग्रा/पौधा इन्डोफिल एम-45 को बुरक दें, उसके 15 दिन बाद जैव फफूंदनाशी **रक्षा** के मिश्रण को

500 ग्राम/पौधा डाल दें। रक्षा मिश्रण को वर्ष में चार बार तीन माह के अंतराल पर पुनः डालें और सिंचाई का बागान में पूरा ख्याल रखें। नई पौध लगाने से पहले उसको 0.1% इन्डोफिल एम-45 घोल मे 30 मिनट के लिए डुबो दें ।

आर्थिक लाभ:यह प्रौद्योगिकी प्रदूषण रहित है। इस विधि में कृषकों के एक रुपया खर्च करने से उन्हें 2.0 रुपये तक की आय प्राप्त हो सकती है एवं सुरक्षाकाल अवधि भी कोई नहीं है।

संकेत: रोगग्रस्त पौधों के आसपास की दो से तीन कतारों में भी इन्डोफिल एम-45/रक्षा का मिश्रण इसी तरह डालें। ऐसा न करने से ये पौधे भी प्रभावित हो सकते हैं। यदि **मूल विगलन रोग** के लक्षण एक पौधे में तीन शाखाओं से अधिक दिखाई दें तो उस पौधे को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए और उसकी जगह नए पौधे को रोपित करना चाहिए। यदि वाटिकाओं में पौधों की मृत्यु हो जाती है तो उनको तुरन्त उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए ऐसा न करने से स्वस्थ पौधे भी संक्रमित हो सकते हैं।

(ग) नवीन्या - मूल विगलन रोग के नियंत्रण हेतु एक नई औषधि : एक नई औषधि नवीन्या (हर्बल्स 80 % व रसायन 20%) जो शहतूत के मूल विगलन रोग नियंत्रण हेतु अधिक प्रभावशाली पाई गई, का निर्माण किया गया है। मूल विगलन से संक्रमित पौधे की छंटाई भू-तल से लगभग 0.5 -1' ऊपर से कर दें। पौधे के निचले हिस्से के चारों तरफ एक छोटा सा गड्ढा बना दें। इसके पश्चात् 10 ग्राम नवीन्या को एक लीटर पानी में मिलाकर घोल बनाएं। इस घोल को (1 लीटर/पौधा) मूल विगलन से संक्रमित पौधे में ऊपर (1/2-1') से डालें जिससे पौधे का निचला हिस्सा भली-भांति भीग जाए। घोल देने के पश्चात् गड्ढे को मिट्टी से बंद कर दें। रोगग्रस्त पौधे के आस-पास की कतारों में भी इसी प्रकार से नवीन्या का उपचार करें, ऐसा करने से पौधों में संक्रमण नहीं फैलेगा। यदि पौधों में रोग का नियंत्रण न हुआ हो तो पुनः इस उपचार को दोहराएं। इस औषधि का व्यापारीकरण कर दिया गया है। यह औषधि नन्दी एग्रो वेट, बेंगलूर में उपलब्ध हैं।

आर्थिक लाभ: यह प्रौद्योगिकी वातावरणीय अनुकूल तथा प्रदूषण रहित है तथा कृषकों के एक रुपया खर्च करने से उन्हें 4.5 रुपये तक की आय प्राप्त हो सकती है।

सावधानियाँ: मूल विगलन रोग के प्रारंभिक लक्षण दिखाई देते ही पौधों का उपचार तुरंत करना चाहिए। उपचारित पौधों में 4-5 दिनों तक सिंचाई न करें। गर्मियों के दौरान मृदा की नमी को >60% रखा जाना चाहिए। उपचार के 10 दिनों के पश्चात् पत्तियों को रेशमकीट के पोषण के लिए उपयोग में लाएं ।

4. मूल जटिल रोग (रूट डिसीज़ कॉम्पलेक्स): इस रोग का प्रकोप स्थापित शहतूत के बगीचों में विशेषकर सूत्रकृमि (*मे. इंकागनीटा*) तथा मूल विगलन रोगाणुओं (*राइजोक्टोनिया बेटेटिकोला* तथा *फ्यु. सोलेनाई*) के संयुक्त संक्रमण से होता है। चूंकि यह दो प्रकार की बीमारियों के संयुक्त आक्रमण से जड़ों में होता है इसलिए इसे मूल जटिल रोग कहते हैं। इस रोग का प्रकोप बहुधा शहतूत की सिंचित वाटिकाओं तथा दोमट मिट्टी में होता है। इसका प्रकोप वर्ष भर में कभी भी हो सकता है। सामान्य तौर पर सूत्रकृमि, जड़ों के अग्र भाग (रूट टिप) को भेद कर उनमें प्रवेश करते हैं ये छिद्र भूमि के अन्दर रहने वाले मूल विगलन रोगाणुओं के लिए एक आकर्षित केन्द्र बन जाते हैं और बड़ी आसानी से जड़ों में घुसकर उनको संक्रमित कर देते हैं। इन दोनों रोगों के संयुक्त आक्रमण से शहतूत की पत्तियों की गुणवत्ता के अलावा उनकी पैदावार में भी लगभग 14-16 % तक की कमी आ जाती है और पौधों की मृत्यु दर भी अधिक संख्याओं में बढ़ जाती है। यह रोग पहले वाटिकाओं के कुछ ही हिस्सों में फैलता है उसके उपरान्त धीरे-धीरे यह पूरी वाटिका में फैल जाता है।

मूल जटिल रोग

लक्षण एवं क्षतिग्रस्त स्वरूप: सर्वप्रथम सूत्रकृमि के संक्रमण से जड़ों पर गांठों का बनना शुरू होता है। इसके उपरान्त मूल विगलन रोगाणु जड़ों में सूत्रकृमि द्वारा किए गए छिद्रों से आसानी से घुसकर आक्रमण करते हैं जिसके परिणामस्वरूप उनका सड़ना शुरू हो जाता है और वह काली पड़कर पिलपिली हो जाती हैं। रोग की तीव्रता बढ़ने से जड़ें पूर्णतया सड़ जाती हैं और पत्तियाँ मुरझाकर तनों से अलग हो जाती हैं, तत्पश्चात् पौधों की मृत्यु हो जाती है।

रोग संकमण कारक: मृदा एवं कृषि उपकरण इस रोग के रोगाणुओं का प्राथमिक स्रोत है। इसके अलावा रोगग्रस्त पौधा, संवेदनशील फसलों के साथ शहतूत को उगाना, कुछ खरपतवार आदि इस रोग के फैलने के द्वितीय कारक हैं। 20 से 350 सें

ग्रे तापमान, 40 % से कम मृदा की आर्द्रता एवं 4-8 पी-एच. मूल जटिल रोग के रोगाणुओं के विकास के लिए अत्यधिक उपयुक्त है।

नियंत्रण के उपाय: मूल जटिल रोग का नियंत्रण निम्नलिखित विधियों द्वारा किया जा सकता है।

(क) रासायनिक विधि: इस विधि में सूत्रकृमि नाशी फ्यूराडान तथा कवकनाशी इन्डोफिल एम-45 का संयुक्त प्रयोग किया जाता है। जैसे ही रोग के लक्षण पौधों पर दिखाई दें उसके आस-पास की 15 सें मी गइराई तक की मिट्टी हटा देने के बाद, 1.5 ग्रा. फ्यूराडान + 10 ग्रा. इन्डोफिल एम-45/पौधा को साथ-साथ डालना चाहिए। उसके उपरान्त इस गड्ढे को ताजी मिट्टी से ढ़क देना चाहिए तथा सिंचाई का प्रबंध करें। इन दवाओं का प्रयोग वर्ष में तीन बार 4 महीनों के अन्तराल पर करें। दवा डालने के 40-45 दिनों पश्चात् ही इन पत्तियों को रेशमकीट के पोषण के लिए उपयोग में लाया जा सकता है।

(ख) एकीकृत नियंत्रण: इस विधि में एक कि.ग्रा. बायोकॉनसोरसियम (*टी. हारजिआनम + टी. विरिडी*) को 24 कि.ग्रा. पुंगामिया की खली तथा 200 कि.ग्रा. गोबर की खाद में मिलाकर मिश्रण बनाएँ (1000 पौधों के लिए पर्याप्त है)। इसके पश्चात् पानी डालकर किसी छायादार स्थान पर एक सप्ताह के लिए रख दें। एक सप्ताह बाद, इस मिश्रण को 200 ग्रा/पौधा के हिसाब से जड़ों के पास 15 सें मी गहरा गड्ढा खोदकर डाल दें। प्रति वर्ष 3 खुराक चार महीनों के अंतर से पुनः डालें और सिंचाई करें।

आर्थिक लाभ:यह विधि वातावरणीय अनुकूल है तथा इस विधि में कृषकों के एक रुपया खर्च करने से उन्हें 1.5 रुपये तक की आय प्राप्त हो सकती है और सुरक्षाकाल अवधि भी कोई नहीं है।

शहतूत के प्रमुख रोगों का काल-चक्र (कैलेन्डर)

शहतूत के प्रमुख रोगों की तीव्रता का काल-चक्र (कैलेन्डर) मौसम के अनुसार उनके संक्रमण के आधार पर तैयार किया गया है जिसको अपनाकर रोगों द्वारा खेतों में होने वाली महामारी को फैलने से रोका जा सकता है। इस कालचक्र में लाल रंग की पट्टी रोगों का प्रकोप अधिक तीव्र, नीली पट्टी रोगों का प्रकोप तीव्र, पीली पट्टी रोगों का प्रकोप मध्यम तीव्र, हरी पट्टी रोगों का प्रकोप नगण्य तथा सफेद पट्टी रोगों का प्रकोप शून्य दर्शाती है। सर्वप्रथम कालचक्र के अनुसार प्रत्येक महीने रोगों की प्रकोपता का अनुमान शहतूत बागानों में लगाएँ तथा रोगों की तीव्रता के अनुसार नियंत्रण के उपायों को अपनाना चाहिए।

शहतूत के प्रमुख पर्णीय एवं भूमिगत रोगों का काल-चक्र (कैलेन्डर)

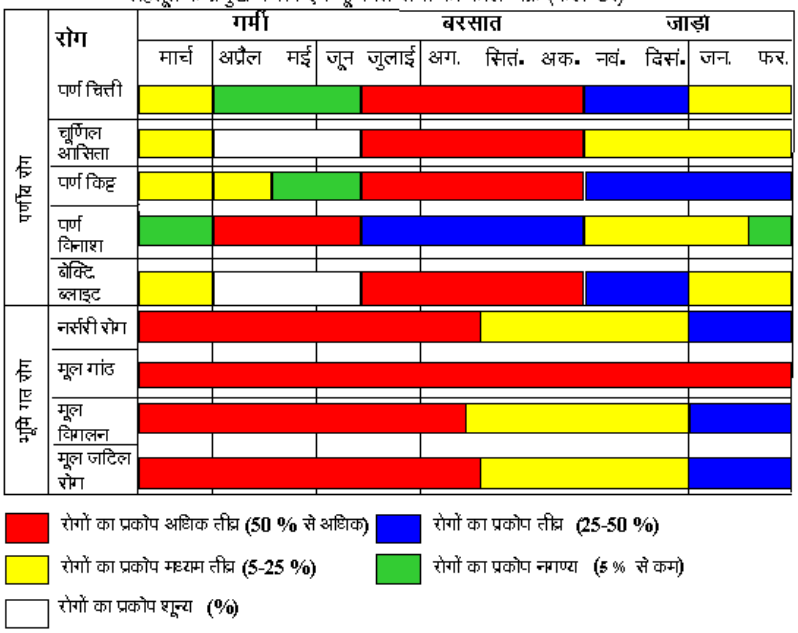

निष्कर्ष

शहतूत के पर्णीय तथा भूमिगत रोगों को नियंत्रण करने के लिए उनके लक्षणों का पहचानना अत्यन्त जरूरी है, जिससे सुझाए गए नियंत्रण के उपाय आसानी से अपनाए जा सकें। यदि रोग की पहचान गलत होगी तो उनका नियंत्रण कर पाना कठिन हो सकता है। क्योंकि सुझाई गई औषधी का प्रयोग खास बीमारी पर नहीं हो पाता। प्रति एकड़ शहतूत के बगीचे के लिए 150-180 ली. कवकनाशी घोल की आवश्यकता होती है। 300-360 ग्रा./मि. ली. कवकनाशी को 150-180 ली. पानी में मिलाने से 0.2 % सांद्रता का घोल प्राप्त हो जाता है। पर्णीय रोगों को नियंत्रण करने के लिए प्रथम छिड़काव रोग के प्रारंभिक लक्षण नज़र आते ही कर देना चाहिए। यदि रोग की प्रचण्डता अधिक हो तो दूसरा छिड़काव 8-10 दिनों पश्चात् करना चाहिए। छिड़काव धूप में न कर शाम के समय या शीतल बेला में करना चाहिए। चूर्णिल आसिता के नियंत्रण के लिए छिड़काव करते समय पत्तियों की निचली सतह पूर्ण रूप से भिगोई जानी चाहिए। अतः शहतूत की स्वस्थ पत्तियों की पैदावार तथा अधिक आय प्राप्त करने के लिए उनके रोगों पर सतत् निगरानी तथा समय से नियंत्रण के उपाय को अपनाना बहुत आवश्यक है। उम्मीद है कि यह समीक्षा रेशम कृषकों को गुणवत्तायुक्त शहतूत की पत्तियों के उत्पादन में सहायक सिद्ध होगी।

शहतूत एवं रेशमकीट के प्रमुख पीड़क एवं उनका नियंत्रण

विनोद कुमार, नरेन्द्र कुमार जे बी, श्रीनिवास बी टी
केन्द्रीय रेशम उत्पादन अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, मैसूर

शहतूत के बागानों में लगभग 200 कीट व गैर कीट देखे गए हैं, परंतु उनमें से कुछ कीट ही पीड़क अथवा नाशी कीटों की श्रेणी में आते हैं । इन नाशी कीटों के प्रकोप से पत्तियों की पैदावार में 10-15% तक की कमी हो जाती है और उनकी गुणवत्ता में भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। कीटों से प्रभावित पत्तियों में प्रोटीन, शर्करा एवं नमी की अपेक्षाकृत कमी हो जाती है तथा वे रेशमकीटों को खिलाने योग्य नहीं रहती हैं। चूंकि शहतूत पत्तियों में उपलब्ध प्रोटीन रेशमकीट में रेशम ग्रंथि का निर्माण करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है, अतः कीटों से प्रभावित पत्तियों को खिलाने से रेशमकीटों की वृद्धि, कोसा भार, कोसा उत्पादन एवं गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इन कीटों की आदत व क्षति के स्वरूप के आधार पर उन्हें मुख्यतः तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है जैसे रस चूषक कीट, पत्ती खाने वाले कीट तथा तना/जड़ खाने वाले कीट।

रस चूषक कीट

रस चूषक कीटों में गुलाबी मीली बग, थ्रिप्स एवं सफेद मक्खी अत्यंत खतरनाक हैं । हाल ही में इनके अलावा पपीते में पाई जाने वाली अति नाशक व विविध भक्षी मिली बग का भी भयानक प्रकोप देखा गया है। शहतूत के रस चूषक कीट आकार में छोटे होते हैं और इनमें चूसने-चुभाने वाले मुखांग पाए जाते हैं। इस प्रकार के कीट जब पत्तियों का रस चूसते हैं तो वे अपने मुखांगों द्वारा जहरीला पदार्थ छोड़ देते हैं जिससे पत्तियाँ सिकुड़कर अनियमित आकार की दिखाई पड़ती हैं।

(1). गुलाबी मीली बग (टुकरा) : *मैकोनेलीकोकस हिरसुटस* (हेमिप्टेरा: स्यूडोकासिडि)

पत्तियों के रस चूसने वाले कीटों में से मीली बग एक अत्यंत खतरनाक कीट है। यह सर्वव्यापी व विविध भक्षी, नाशक कीट है तथा भारत के सभी राज्यों में जहाँ शहतूत की खेती की जाती है, पाया जाता है। हालाँकि इस कीट का प्रकोप साल भर रहता है, लेकिन गर्मियों के महीनों (मार्च से मई) में तीव्र रहता है।

मीली बग

लक्षण एवं क्षतिग्रस्त स्वरूप : मीली बग शहतूत पौधों के ऊपर की कोमल पत्तियों का रस चूसते हैं जिससे टहनियों का अग्र भाग चपटा/मोटा होकर गुच्छा समान हो जाता है तथा पत्तियाँ सिकुड़ जाती हैं। टहनियों तथा पत्तियों पर मीली बग गुच्छे के समान दिखाई पड़ते हैं। परिणामस्वरूप पौधों की वृद्धि अवरुद्ध हो जाती है और पत्तियों की पैदावार व गुणवत्ता में कमी आ जाती है। इन्हीं लक्षणों की वजह से यह टुकरा के नाम से भी जाना जाता है।

नियंत्रण के उपाय :

यांत्रिक विधि : पौधे के संक्रमित भागों को काट कर तुरंत नष्ट कर देना चाहिए। चूंकि शहतूत बागानों में कुछ खरपतवार इस कीट के एकांतर पोषी होते हैं अतः बागानों को खरपतवार से मुक्त रखना चाहिए। उपरोक्त यांत्रिक विधि को प्रत्येक फसल के लिए इस्तेमाल करें।

रासायनिक विधि : 0.2 % डी डी वी पी (डाइक्लोरोवस 76% ईसी; 2.6 मिली/ली पानी) का जलीय घोल बनाकर पत्ती तुड़ाई/छंटाई के 10 दिनों बाद छिड़काव करना चाहिए। दूसरा छिड़काव पहले छिड़काव के 10-15 दिनों बाद करना चाहिए। सुरक्षा अवधि : 17 दिन।

जैविक विधि : परभक्षी *क्रिप्टोलीमस मौनट्राउजियरी* के 250 प्रौढ़ प्रति एकड़ की दर से दो बार अक्तूबर-नवम्बर तथा जनवरी - फरवरी के महीनों में मुक्त किया जाना चाहिए। यह परभक्षी मीली बग के अण्डों, शिशु व वयस्क कीटों को अपना भोजन बनाते हैं तथा शहतूत फसल को ये परभक्षी कोई क्षति नहीं पहुँचाते।

(2) पपीता मीली बग (*पेराकोकस मारजिनेटस*)

इस कीट से पपीता व शहतूत फसलों के अलावा आम, आलू, टमाटर, कपास, गुड़हर, काली मिर्च व कुछ खरपतवार (मुख्यत: पार्थेनियम) भी प्रभावित हैं। यह कीट विदेशी मूल का है जो दक्षिण अमेरिका व मैक्सिको में पाया जाता है । भारत में इस मीली बग को प्रथम बार जुलाई 2008 में कोयम्बत्तूर (तमिलनाडु) में पपीते के ऊपर पाया गया तथा धीरे-धीरे इसका प्रकोप अन्य क्षेत्रों में जैसे सेलम, ईरोड़, सत्यमंगलम, अन्नूर एवं तालवाड़ी में फैलता दिखाई पड़ा। तदनन्तर इस कीट का प्रकोप केरल, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश एवं महाराष्ट्र में भी फैल गया । इस विनाशकारी कीट ने तमिलनाडु में शहतूत की खेती को लगभग 60 करोड़ की क्षति पहुँचाई । बाकी फसलों में नुकसान एक हजार करोड़ से ऊपर आंका गया ।

लक्षण : यह कीट शहतूत की पत्तियों, टहनियों व तनों पर आक्रमण कर उनका रस चूस कर अपना भोजन बनाते हैं जिससे पत्तियाँ सिकुड़ जाती हैं तथा पत्तियों का पर्णहरिम धीरे-धीरे गायब हो जाता है। परिणामस्वरूप पत्तियां निर्जीव व पीली पड़ कर भूमि पर गिर जाती हैं। अत्यधिक प्रकोप से शहतूत की पत्तियों, टहनियों व तनों पर ये कीट सफेद गुच्छे के समान (रुई के बाल की तरह) लिपटे दिखाई पड़ते हैं। ये कीट अपना जीवन चक्र 28-30 दिनों में पूरा करते हैं।

नियंत्रण के उपाय :

यांत्रिक विधि : जैसे ही इस कीट का प्रकोप नजर आए, शहतूत के संक्रमित भागों को समय-समय पर काट कर जलाकर नष्ट कर देना चाहिए। शहतूत बागानों में यदि इसका संक्रमण अत्यधिक हो तो सम्पूर्ण बागान में पौधों की छंटनी कर देनी चाहिए तथा संक्रमित टहनियों व तनों को जलाकर नष्ट कर देना चाहिए।

रासायनिक विधि : कीटनाशक दवाओं (प्रोफिनोफोस, डायमेंथोएट एवं डाइक्लोरोक्स आदि) के उपयोग से अस्थायी उपचार देखा गया । कृषकों के द्वारा बार-बार दवाइयां डालने से वातावरण जहरीला एवं प्रदूषित हुआ एवं लाभदायी कीट मारे गए ।

प्राकृतिक शत्रु : लेपीडोपटेरा गण का स्पालजीस इपीआस नामक परभक्षी कीट पपीता मीली बग पर बहुतायत से भक्षण करते पाया गया। अन्य परभक्षी कीटों में क्रीप्टोलिमस मोनट्रोझीरी एवं साथमनस कोक्सीवोरा भी प्राय: देखे गए । फिर भी परभक्षी शिकार के घनत्व आधारित होने एवं कीटनाशकों के व्यापक उपयोग से ये परभक्षी पपीता के मीली बग की संख्या को नियंत्रण में नहीं रख सके ।

उत्तम जीव कीट नियंत्रण : इनसारटीड नामक परजीवी की तीन प्रजातियां जैसे ऐसीरोफेगस पपायी, सुडलीप्टोमास्ट्रीक्स मैक्सीकाना एवं एनागायरस लोकी को जब ग्वाम, पालू आई लैंड एवं श्रीलंका में पपीता पर छोड़े गए तो एसीरोफेगस पपायी नामक परजीवी ने मात्र 6 माह में पपीता मीली बग को नियंत्रित कर दिया । अत: एन बी ए आई आई, बेंगलूर द्वारा उपरोक्त तीन प्रजातियों को जो जुलाई 2010 में यूनाइटेड स्टेट से आयात किया गया एवं संगरोध संबंधी सुरक्षा एवं विशिष्ट प्रयोगों को पूर्ण कर अक्तूबर 2010 में सबसे अधिक प्रभावशाली परजीवी ए. पपायी को क्षेत्र में उपयोग के लिए प्रसारित किया गया। शहतूत के बागानों में इस परजीवी के 100 वयस्क/प्रति एकड़ एक बार छोड़ने से 4-6 माह में पपीता मीली बग की पूरी रोकथाम हो जाती है । लेकिन इस बात का ध्यान रहे कि कीटनाशक दवाइयों का उपयोग बिल्कुल न करें ।

(3). थ्रिप्स : *सूडोडेन्ड्रोथ्रिप्स मोरी* : यह विविध भक्षी नाशक कीट है और इसकी गिनती भारत में मुख्य कीट के रूप में की जाती है। वैसे तो ये कीट पूरे वर्ष शहतूत पौधों पर आक्रमण करते हैं, परंतु इनका भयानक प्रकोप गर्मियों (फरवरी से अप्रैल) में देखा जा सकता है।

लक्षण एवं क्षतिग्रस्त स्वरूप : ये कीट शहतूत की पत्तियों के एपीडर्मिस ऊतकों का रस चूस कर उनको चाट जाते हैं जिससे प्रारंभ में सफेद/हल्की पीली धारियाँ दिखाई पड़ती हैं। अत्यधिक संक्रमण अवस्था में पत्तियों पर जगह-जगह पर सफेद/हल्के पीले चकत्ते दिखाई पड़ते हैं जिसके परिणामस्वरूप पत्तियाँ सिकुड़ कर भूरी व नाव के आकार की हो जाती हैं तथा पौधों का विकास भी रुक जाता है।

नियंत्रण के उपाय :

यांत्रिक विधि : पौधों पर जल की फुहार (स्प्रिंकलर सिंचाई) देने से शिशु एवं वयस्क कीट जमीन पर गिर कर मर जाते हैं। बागानों को खरपतवार से मुक्त रखें।

रासायनिक विधि : 0.1% रोगोर (डाइमेथोएट 30 % ईसी; 3.3 मि ली/ली पानी) के घोल का दो बार एक सप्ताह के अंतराल बाद शहतूत के पौधों पर छिड़काव करने से शिशु एवं वयस्क कीट नष्ट हो जाते हैं। सुरक्षा अवधि : 15 दिन।

शहतूत बागानों में प्राकृतिक रूप में उपलबध परजीवी *मिनोविलस सेक्समाक्यूलेटस* भी थ्रिप्स के शिशु व वयस्क कीटों को अपना भोजन बना कर उनका प्रकोप कम करते हैं तथा ये परजीवी शहतूत को हानि नहीं पहुँचाते हैं।

(4) सफेद मक्खी :

यह अल्पभक्षी और शहतूत फसल का खतरनाक कीट है। इसका वैज्ञानिक नाम *एल्यूरोडिकस डिसपरसस* (होमोपेट्रा: एलीरोडिडेई) है और इसे कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल, असम आदि में देखा जा सकता है। ये कीट शहतूत की उन्नतशील किस्मों जैसे वी 1, कनवा 2 आदि को अपना शिकार बनाते हैं । इस कीट के संक्रमण से फसल को 8-10 % की हानि होती है।

सफेद मक्खी

प्रकट होने का समय : सफेद मक्खी का प्रकोप प्राय: मार्च-जून तथा अक्तूबर-दिसम्बर के दौरान होता है।

लक्षण एवं क्षतिग्रस्त स्वरूप: सफेद मक्खियाँ आमतौर पर पत्तियों की निचली पिछली सतहों पर ही आक्रमण करके उनका रस चूसती हैं। पत्ती की निचली सतह पर इसके अण्डे चकत्तों के रूप में चिपके रहते हैं। पत्तियों में सफेद फफूंद लग जाती है। अधिक आक्रमण की अवस्था में सफेद फफूंद काली पड़ जाती है जिसके परिणामस्वरूप पत्ती पीली पड़कर पौधों से गिर जाती है। ये वाइरस के रोगाणु ले जाने में सक्षम हैं और इससे शहतूत में लीफ कर्ल बीमारी उत्पन्न हो सकती है । इस कीट के लक्षण पाउडरी मिल्ड्यू की तरह दिखाई पड़ते हैं ।

जीवन चक्र: वयस्क मक्खी सफेद रंग की 4-5 मि मी लम्बी होती है । प्रत्येक मादा मक्खी पत्तियों की निचली सतह पर लगभग 40-50 अण्डे देती है जिनका प्रस्फुटन 4-6 दिनों में होता है। इसके शिशु लाल-पीले रंग के होते हैं और यह अवस्था 11-25 दिनों की होती है। इसका जीवन चक्र पूर्ण होने में लगभग 30-35 दिनों का समय लगता है।

नियंत्रण के उपाय :

यांत्रिक विधि : पौधे के संक्रमित भाग को काट कर नष्ट कर देना चाहिए।

रासायनिक विधि : 0.1% रोगोर (डाइमेथोएट 30 % ईसी; 3.3 मि ली/ली पानी) का छिड़काव करना चाहिए। 0.1% नीम के तेल को साबुन के पानी में मिलाकर (1:2 अनुपात) पौधों के ऊपर छिड़काव करें। सुरक्षा अवधि : 15 दिन।

जैविक विधि : परभक्षी *क्रिप्टोलीमस मोनट्राउजियरी* के 300 वयस्क/एकड़ की दर से खेतों में मुक्त कर दें। परभक्षी *किमनस कोकसीवोरा* के 500 वयस्क/एकड़ की दर से खेतों में छोड़ दें।

5. जैसिड् : *एम्पोएसका फ्लेविसेन्स :* यह अधिकतर भारत के दक्षिण राज्यों में ही पाया जाता है, अन्य राज्यों में इस कीट का प्रकोप न के बराबर होता है।

प्रकट होने का समय: इसका प्रकोप अधिकतर गर्मियों में खासतौर पर फरवरी से जून तक देखा जा सकता है।

जैसिड

लक्षण एवं क्षतिग्रस्त स्वरूप: इस कीट का प्रकोप अधिकतर पत्तियों पर होता है और ये शहतूत की पत्तियों का रस बड़े स्वाद से चूसते हैं जिससे पत्तियों का शीर्ष भाग व किनारे भूरे पड़ जाते हैं और पत्तियाँ झुलसी जैसी दिखाई पड़ती हैं। यह कीट पत्तियों के किनारों की शिराओं के माध्यम से ही नीचे की ओर बढ़ता है। आक्रमण की अंतिम स्थिति में पत्तियाँ कप का आकार ले लेती हैं, इन्हीं लक्षणों के कारण इस कीट को हापर बर्न कहते हैं।

जीवन चक्र: वयस्क कीट हल्के हरे रंग का होता है और ये तिरछा चलते हैं । मादा कीट पत्तियों की निचली सतह पर 20-30 अण्डे देती है जिनका प्रस्फुटन 4-7 दिनों में होता है । शिशु कीट हल्का पीला होता है और ये पत्तियों के ऊपर ही प्यूपा बनाते हैं । इस कीट का जीवन चक्र 30-40 दिनों में पूरा होता है ।

नियंत्रण के उपाय:

यांत्रिक विधि: शिशु व वयस्क कीट अत्यधिक प्रकाशानुवर्ती होते हैं । अत: उनको प्रकाश की रोशनी में आकर्षित कर नष्ट कर देना चाहिए ।

रासायनिक विधि: 0.1% रोगोर (डाइमेथोएट 30 % ईसी; 3.3 मि ली/ली पानी) या 0.05% डी डी वी पी (डाइक्लोरोवस 76 % ईसी; 0.66 मि ली/ली पानी) का छिड़काव पौधों पर करना चाहिए । सुरक्षा अवधि : 6 दिन ।
शहतूत बागानों में प्रकृतिक में उपलबध परजीवी *रिडयूविड* तथा *पेन्टामिड* भी इस कीट के शिशु व वयस्क कीटों को अपना भोजन बना कर उनका प्रकोप कम करते हैं तथा ये परजीवी शहतूत को हानि नहीं पहुँचाते हैं।

(6) शल्क कीट (स्केल इन्सेक्ट) : *ऐसिटिया निगरा:* इसका प्रकोप अधिक क्षेत्रों में नहीं पाया जाता है अत: इसे लघु कीट की संज्ञा दी गई है । साधारणतौर पर यह दक्षिण भारत के राज्यों में अधिक प्रचलित है, अन्य राज्यों में इसका आक्रमण बहुत कम देखा जा सकता है ।

शल्क कीट

प्रकट होने का समय: इस कीट का प्रकोप वर्ष भर रहता है, परंतु गर्मियों (मार्च-जून) में इनका आक्रमण अधिक होता है ।
लक्षण एवं क्षतिग्रस्त स्वरूप: शल्क कीट साधारणतया शहतूत के पौधों की टहनियों से चिपक कर उनका रस चूसते हैं जिससे संक्रमित टहनियाँ मृत दिखलायी देने लगती हैं । पत्तियाँ पीली व चित्तीदार हो जाती हैं । ये कीट एक मोमी पदार्थ को टहनियों पर छोड़ते हैं जो सूखकर पपड़ी की तरह तनों पर जमा हो जाता है।
जीवन चक्र: मादा कीट 500-800 अण्डे देती है जिनका प्रस्फुटन 5-7 दिनों में हो जाता है। मादा का 10-12 दिनों के अंतराल में चार बार निर्मोचन हो जाता है । इस कीट का जीवन चक्र 30-35 दिनों में पूरा होता है ।

नियंत्रण के उपाय:

यांत्रिक विधि: संक्रमित टहनियों को काट कर नष्ट कर देना चाहिए ।

रासायनिक विधि: 0.05% रोगोर (डाइमेथोएट 30 % ईसी; 1.6 मि ली/ली पानी) या 0.05% डी डी वी पी (डाइक्लोरोवस 76 % ईसी; 1.97 मि ली/ली पानी) का छिड़काव पौधों पर जहाँ पर संक्रमण हो, करना चाहिए । सुरक्षा अवधि : 10 दिन।

(7) माइट : इस कीट का वैज्ञानिक नाम *ट्रेटानिकस ल्यूडिनाई* तथा *ट्रे. इक्यूटोरियस* (ऐकेरीना: ट्रेटानिथिडेइ) है। ये कीट पत्तियाँ, कलियाँ, पर्व तथा कोमल टहनियों पर अपना आक्रमण करते हैं। माइट लघु कीट के वर्ग में आते हैं क्योंकि इनका आक्रमण सर्वव्यापी नहीं है।

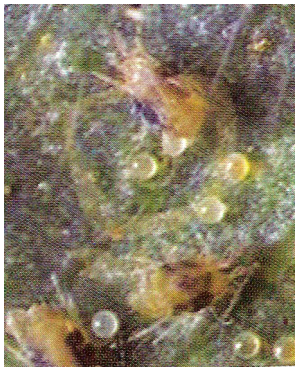

प्रकट होने का समय: पूरे वर्ष इनका प्रकोप देखा जा सकता है, लेकिन इनका गंभीर आक्रमण मार्च-सितम्बर में देखने को मिलता है।

लक्षण एवं क्षतिग्रस्त स्वरूप: माइट पत्तियों तथा तने के ऊपरी सिरे जहाँ पर नई पत्तियों का आगमन होता है, पर आक्रमण कर उनका रस चूसते हैं जिससे पत्ती सिकुड़कर छोटी हो जाती है। जिस स्थान से ये कीट रस चूसते हैं वहाँ पर एक सफेद धब्बा बन जाता है। अधिक आक्रमण अवस्था में पत्ती सूखकर पौधों से अलग हो जाती है।

जीवन चक्र: इस कीट की मादा पत्तियों की निचली सतह पर लगभग 30-70 अण्डे देती है जिनके प्रस्फुटन से लार्वे निकलते हैं। इनकी शिशु अवस्था लगभग 10-12 दिनों की होती है।

नियंत्रण के उपाय:

यांत्रिक विधि: संक्रमित पौधे की तुरंत छंटाई कर देनी चाहिए और टहनियों को नष्ट कर देना चाहिए। स्प्रिंकलर विधि द्वारा सिंचाई करनी चाहिए जिससे कीटों के अण्डे व शिशु जमीन पर गिर कर नष्ट हो जाते हैं।

रासायनिक विधि: 0.05% जोलान या थियोडोन का छिड़काव पौधों पर करना चाहिए। सुरक्षा अवधि : 10 दिन।

पत्ती खाने वाले कीट

1. पर्ण रोलर : *डायफेनियाँ पलवेरुलेन्टिस* (लेपीडोप्टेरा: पाइरेलिडी)

यह भारत के अनेक राज्यों जैसे कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, केरल, उत्तरांचल आदि में शहतूत की फसल में प्रमुख कीट के रूप में आक्रमण करता है। अन्य राज्यों में इसका प्रभाव कम देखने को मिलता है । इसका प्रकोप पौधों की छंटाई या पत्ती तुड़ाई के 15 दिनों पश्चात् से लेकर 70 दिनों तक देखा जा सकता है और लगभग शहतूत की सभी लोकप्रिय किस्मों पर आक्रमण करता है।

प्रकट होने का समय : यूं तो पर्ण रोलर का आक्रमण जून से फरवरी तक देखा जा सकता है परंतु इसकी तीव्रता सितम्बर से नवम्बर तक अधिक होती है।

लक्षण एवं क्षतिग्रस्त स्वरूप : ये कीट शहतूत की अधखुली कोमल पत्तियों पर आक्रमण करते हैं तथा युवा अवस्था के लार्वे कोमल पत्तियों के अंदर घुसकर उनके ऊतकों को अपना भोजन बनाते हैं। इस कारण पत्तियाँ मुड़कर लिपट जाती हैं जिससे पत्तियों की पैदावार पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इन कीटों का मल/मूत्र संक्रमित भाग के निचले पत्तों पर देखा जा सकता है। पर्ण रोलर कीट रेशमकीटों में मुख्यत: पेब्रीन के रोगाणुओं को ले जाने में अपनी भूमिका निभाते हैं ।

जीवन चक्र : इस कीट की मादा लगभग 100-150 अंडे देती है जिनका प्रस्फुटन 3-4 दिनों में हो जाता है। इसकी लार्वीय अवधि 8-12 दिनों की होती है तथा वे भूरे रंग के होते हैं जिनके खण्डों पर काले निशान होते हैं। ये कीट 21-29 दिनों में अपना जीवन चक्र पूरा कर लेते हैं।

नियंत्रण के उपाय :

यांत्रिक विधि : इस कीट से प्रभावित टहनियों, मिट्टी की सतह पर उपलब्ध सूखी पत्तियाँ एवं खरपतवार को एकत्रित कर उन्हें नष्ट कर दें।

रासायनिक विधि : 0.076 % डी डी वी पी (डाइक्लोरोवस 76% ईसी; 1 लीटर पानी में 1 मि ली मिलाएं) का छिड़काव शहतूत पौधों के ऊपर करना चाहिए। पहला छिड़काव पत्ती तुड़ाई के 10 दिनों के पश्चात् तथा दूसरा छिड़काव पहले छिड़काव के 10-12 दिनों बाद करना चाहिए। सुरक्षा अवधि: 17 दिन।

जैविक विधि : अण्ड परजीवी *ट्राइकोगामा किलोनिस* के 4 ट्राइकोकार्ड/एकड़ की दर से 4 भागों में विभक्त करके प्रत्येक सप्ताह शहतूत बागानों में छोड़ना चाहिए। एक ट्राइकोकार्ड में लगभग 18,000-20,000 *ट्राइकोगामा* के परजीवी होते हैं। प्रत्येक कार्ड को 12-16 टुकड़ों में काटकर बागानों में विभिन्न जगहों पर पत्तियों के नीचे स्टेपल कर दें ताकि परपोषी अण्डों का प्रभावी परजीवीकरण हो सके। इसके साथ-साथ दूसरे प्यूपा परजीवी जैसे *ट्रेटास्टिकस होवार्डी* को एक लाख/एकड़ की दर से बागानों में मुक्त करना चाहिए। इन सभी जैव सूक्ष्म जीवाणुओं को रासायनिक छिड़काव के 3 दिनों के पश्चात् सांयकाल के समय छोड़ना चाहिए।

2. बिहार हेयरी केटरपिलर :

यह विविध भक्षी कीट है इसका वैज्ञानिक नाम *स्पाईलोसोमा औब्लिका* (लेपीडोप्टेरा: आर्कटिडी) है। शहतूत के अलावा यह सोयाबीन, जूट, सूर्यमुखी, चना आदि फसलों को भी हानि पहुँचाता है।

प्रकट होने का समय : इसका आक्रमण अगस्त से फरवरी तक रहता है, परंतु अक्तूबर एवं नवम्बर में इसकी तीव्रता अधिक हो जाती है।
लक्षण एवं क्षतिग्रस्त स्वरूप : शिशु कीट पत्तियों की पर्णहरिम परत को खाते हैं जिससे पत्तियों की शिराएँ बाहर दिखलाई पड़ती हैं और पत्ती शुष्क एवं मृत हो जाती है। वयस्क कीट पूरे पत्ते को खाते हैं और शाखाओं को पत्ता रहित बना देते हैं। बागानों में पौधे बिना पत्तियों के दिखाई पड़ते हैं।

जीवन चक्र : इस कीट की मादा 1000-2000 के समूहों में पत्तियों की निचली सतह पर अण्डे देती है जो हल्के हरे रंग के होते हैं जिनका प्रस्फुटन 5-7 दिनों में हो जाता है। लार्वे जिनका शरीर बालों से ढका रहता है छः बार निर्मोचन करते हैं। वयस्क कीट का रंग हल्का भूरा तथा पेट गहरे लाल रंग का होता है। ये मेड़ों, पत्थरों तथा पेड़ों के तनों से चिपके रहते हैं। इस कीट का पूर्ण जीवन चक्र 44-50 दिनों का होता है ।

नियंत्रण के उपाय :

यांत्रिक विधि : शहतूत बागानों का नियमित रूप से अवलोकन करें और इस कीट के अण्ड समूहों तथा शिशुओं को एकत्रित करके जलाकर नष्ट कर दें। वयस्क कीटों को आकर्षित करने के लिए प्रकाश-जालों की स्थापना करें और प्रकाश स्रोत के पास एक बड़े बर्तन में 0.5% का साबुन का घोल बनाकर रखें जिससे ये कीट प्रकाश से आकर्षित हो कर इस घोल में गिर कर मर जाते हैं।

रासायनिक विधि : कीटों को मारने हेतु 0.15 % डी डी वी पी (डाइक्लोरोवस 76% ईसी; 1.97 मिली/लीटर पानी) का शहतूत पौधों के ऊपर छिड़काव करना चाहिए। सुरक्षा अवधि: 15 दिन।

जैविक विधि : अण्ड परजीवी जैसे *ट्राइकोग्रामा किलोनिस* के 4 ट्राइकोकार्ड/एकड़ की दर से 4 भागों में विभक्त करके प्रत्येक हफ्ते शहतूत बागानों में मुक्त कर दें। प्रत्येक कार्ड को 12-16 टुकड़ों में काटकर बागानों में विभिन्न जगहों पर पत्तियों के नीचे स्टेपल कर देना चाहिए।

3. कट वर्म : इस कीट का वैज्ञानिक नाम *स्पोडोप्टेरा लिटुरा* (लेपिडॉप्टेरा: नोक्टुइडी) है। यह विविध भक्षी कीट है तथा अनेक फसलों जैसे शहतूत, तम्बाकू, अरण्डी तथा अनेक प्रकार की सब्जियों पर आक्रमण कर उनको हानि पहुँचाते हैं। अत: कट वर्म का आक्रमण शहतूत फसल पर आमतौर पर वहीं देखने को मिलता है जहाँ सब्जियाँ उगाई जाती हैं।

प्रकट होने का समय: इसका प्रकोप अगस्त से फरवरी के बीच होता है।

लक्षण एवं क्षतिग्रस्त स्वरूप: इस कीट के लार्वे शहतूत पौधों की टहनियों/तने को प्रभावित कर उन्हें काट डालते हैं इसलिए इन्हें कट वर्म कहते हैं। गंभीर आक्रमण की स्थिति में ये कीट शहतूत की पत्तियों को भी तेजी से खाकर नष्ट कर देते हैं जिसके परिणामस्वरूप पौधा शाखा व पत्ती हीन दिखाई पड़ता है।
जीवन चक्र: मादा कीट पत्तियों की निचली सतह पर 200-300 अण्डे समूह में देती है जो 4-5 दिनों में प्रस्फुटित हो जाते हैं और लार्वा कहलाते हैं। ये लार्वे रात में विचरण करते हैं तथा दिन के समय हल्की मिट्टी की दरारों में व पेड़ की जड़ों के निकट दुबके रहते हैं। इन कीटों के पंखों पर सफेद लहराता निशान बना होता है। इनका जीवन चक्र 36-40 दिनों में पूर्ण हो जाता है।

नियंत्रण के उपाय:

यांत्रिक विधि: कीटों के अण्ड समूहों तथा लार्वों को एकत्रित कर नष्ट कर दें। प्रकाश स्रोत की स्थापना कर उसके नीचे एक बड़े पात्र में 0.5% का साबुन का घोल बनाकर रख दें। ये कीट प्रकाश से आकर्षित हो कर इस घोल में गिर कर मर जाते हैं।

रासायनिक विधि: 0.15 % डी डी वी पी के घोल का छिड़काव पौधों पर करें। सुरक्षा अवधि: 10 दिन।

जैविक विधि: शहतूत बागानों में प्राकृतिक रूप से उपलबध परजीवी जैसे *इकेन्थिकोना फरसिलेटा* भी इस कीट के शिशु व वयस्क को अपना भोजन बना कर उनका प्रकोप कम करने में सहायक होते हैं तथा ये परजीवी शहतूत को हानि नहीं पहुँचाते हैं।

4. पंखहीन टिड्डा (ग्रास हॉपर) :

इस पंखहीन ग्रास हॉपर का वैज्ञानिक नाम *निर्योथाक्रिस एक्युटिसेप्स नीलगिरेन्सीस* (आर्थोप्टेरा: एक्रीडिडी) है। यह वर्षा आधारित शहतूत खेती में अत्यन्त खतरनाक कीट है। शहतूत की फसल को ये अत्यधिक हानि पहुँचाते हैं इसके अलावा रागि, मूंगफली, सेम, आलू, सूर्यमुखी, ज्वार आदि को भी प्रभावित करते हैं।

प्रकट होने का समय : इस कीट का प्रकोप वैसे तो जून से सितम्बर तक रहता है, परंतु सबसे अधिक प्रकोप जुलाई से अगस्त तक देखा जा सकता है।

लक्षण एवं क्षतिग्रस्त स्वरूप : इस टिड्डे के शिशु व वयस्क दोनों ही शहतूत की पत्तियों एवं अंकुरित कलियों को खाकर पौधों को हानि पहुँचाते हैं। तीव्र आक्रमण की अवस्था में ये कीट पौधे की पत्तियों को पूरी तरह खा लेते हैं, केवल मध्य शिराएं ही बच जाती हैं।

जीवन चक्र : इस कीट की मादा लगभग 6-8 एग पोड हल्की मिट्टी में 2-3 सें मी की गहराई में देती है। प्रत्येक एग पोड में 11-18 अंडे होते हैं जिनका प्रस्फुटन 28-31 दिनों में होता है। शिशुकीट 6 इनस्टार से होकर गुजरता है। यह कीट 150-175 दिनों में अपना जीवन चक्र पूरा करता है। वयस्क टिड्डा हल्के हरे रंग का होता है जिनमें मादा नर से बड़ी होती है।

नियंत्रण के उपाय :

यांत्रिक विधि : इस कीट से प्रभावित शहतूत बागानों की तुरंत गहरी जुताई-गुड़ाई कर देनी चाहिए जिससे कि उसके अण्डे मृदा की सतह पर आ जाते हैं तथा सूर्य के प्रकाश की गर्मी से मर जाते हैं। बागानों को खरपतवार से मुक्त रखना चाहिए और सुबह के समय बागानों से शिशु व वयस्क कीटों को एकत्रित कर नष्ट कर दें।

रासायनिक विधि : शिशु एवं वयस्क टिड्डों को मारने के लिए पौधों पर 0.076 % डी डी वी पी (1 ली पानी में 1 मि ली मिलाएँ) का छिड़काव करें। सुरक्षा अवधि: 10 दिन । यदि टिड्डों का प्रकोप अधिक हो तो 10 दिनों के बाद पुन: एक बार छिड़काव करें।

5. कॉकशेफर बीटल:

इसका वैज्ञानिक नाम *होलोट्राईकिया सिरेटा* (कोलिओपेट्रा: मेलोलोन्थीडी) है। चूंकि यह मई-जून में प्रकोप फैलाता है इसलिए इसे मई-जून बीटल भी कहते हैं। इसका प्रकोप कर्नाटक, केरल व तमिलनाडु के कुछ हिस्सों में देखा जा सकता है। ये कीट अधिकतर गन्ने के खेतों में अपने अण्डे देते हैं तथा इनके वयस्क शहतूत एवं नीम की पत्तियों पर आक्रमण कर उनको अपना भोजन बनाते हैं।

प्रकट होने का समय: इसका प्रकोप मई से सितम्बर तक रहता है।
लक्षण एवं क्षतिग्रस्त स्वरूप: वयस्क कीट रात्रि में शहतूत बागानों में घुसकर फसल पर आक्रमण करते हैं तथा पत्तियों को चट कर जाते हैं। तीव्र आक्रमण की अवस्था में ये कीट पौधे को पूरी तरह खा लेते हैं परिणामस्वरूप पौधा पत्ती हीन दिखाई पड़ता है।
जीवन चक्र: इस कीट की मादा गन्ने के खेतों की मिट्टी खासतौर पर मिट्टी के गोलों के ऊपर अण्डे देती है जिनसे लारवे निकलते हैं। इसका पूर्ण जीवन चक्र एक साल में पूरा होता है।

नियंत्रण के उपाय:

यांत्रिक विधि: प्रकाश स्रोत की स्थापना कर उसके नीचे एक बड़े बर्तन में जिसमें मिट्टी का तेल तथा पानी रख दें जिससे ये कीट प्रकाश से आकर्षित हो कर इस घोल में गिर कर मर जाएगें।
रासायनिक विधि: 0.2 % डी डी वी पी (2.63 मिली/ली पानी) या 0.2% नीम का तेल (2 मिली/ली पानी) का छिड़काव पौधों के ऊपर करें। सुरक्षा अवधि: डी डी वी पी के लिए 17 दिन तथा नीम के तेल के लिए 12 दिन है।

तने/जड़ खाने वाले कीट

1. तना बेधक (स्टेम बोरर) : इसका वैज्ञानिक नाम *एप्रिओना* जाति (कोलीपेट्रा: क्रेम्बाइसिडेइ) है। यह लगभग भारत के सभी राज्यों में जहाँ पर शहतूत की खेती होती है, पाया जाता है चूंकि यह फसल को अधिक नुकसान नहीं पहुँचाता है इसलिए इसकी गणना लघु कीटों में की जाती है।

प्रकट होने का समय : इस कीट का प्रकोप वर्ष भर रहता है परंतु भीषण रूप नहीं लेता।
लक्षण एवं क्षतिग्रस्त स्वरूप : ये कीट शहतूत के मुख्य तने को काट-काट कर उनमें गहरा व लम्बा छेद बना देते हैं। शाखाओं के अंदर जाकर तने के ऊतकों को हानि पहुँचाता है। अत्यधिक प्रकोप से पौधा मर भी जाता है।
जीवन चक्र : मादा कीट बनाए हुए तने के छिद्र में छाल के नीचे अण्डे देती है जिनका प्रस्फुटन 7-10 दिनों में होता है। इस कीट का वयस्क बड़े आकार का एवं गहरे स्लेटी रंग का होता है। इसका जीवन चक्र पूर्ण होने में सात-आठ माह का समय लगता है।

नियंत्रण के उपाय :

यांत्रिक विधि : संक्रमित शाखा को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए। जिन मुख्य तनों में प्रकोप अधिक अवस्था में हो उनको भी काट कर जला देना चाहिए।
रासायनिक विधि : कीट के बनाए हुए मुख्य तनों के छिद्र में 0.1 % मोनोक्रिप्टोफोस (न्यूवेक्रोन) व मिट्टी का तेल मिलाकर 1:1 अनुपात डालकर छेद को बंद कर देना चाहिए। पौधों की संक्रमित शाखाओं पर भी 0.1% मोनोक्रिप्टोफोस या मेलेथियोन का छिड़काव कर देना चाहिए।

2. छाल बेधक: इस कीट का वैज्ञानिक नाम *इन्डरबिला क्वाडरिनोटेटा* है।

लक्षण एवं क्षतिग्रस्त स्वरूप: ये कीट मुख्यत: वृक्षों के तनों व शाखाओं की छाल खाते हैं, तनों से तरल द्रव्य का रिसाव होता है जिससे पौधों की वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

नियंत्रण के उपाय:

यांत्रिक विधि: लार्वों को एकत्रित कर नष्ट कर देना चाहिए।
रासायनिक विधि: पौधों के ऊपर 0.1 % मोनोक्रोटोफोस (न्यूवेक्रोन) का छिड़काव कर देना चाहिए। सुरक्षा अवधि: 15 दिन। सर्वप्रथम कीटों की प्रकोपता का अनुमान शहतूत बागानों में लगाएँ। प्रकोपता के आधार पर जैसे कम (5-10 %), मध्यम (10-30 %) तथा तीव्र (30 % से अधिक) के अनुसार नियंत्रण उपायों को अपनाना चाहिए। यदि शहतूत बागानों में कीटों का प्रकोप कम हो तो उनके निवारण के लिए यांत्रिक विधि ही पर्याप्त है। कीटों की मध्यम व तीव्र प्रकोपता के नियंत्रण हेतु एकीकृत विधि (आई पी एम; यांत्रिक, रासायनिक व जैविक) को इस्तेमाल में लाना चाहिए। प्रति एकड़ शहतूत के बगीचे के लिए 150-180 ली./एकड़ कीटनाशी घोल की आवश्यकता होती है। यदि कीटों का आक्रमण तीव्र हो तो सुझाई गई कीटनाशियों का दूसरा छिड़काव पहले छिड़काव के 10-15 दिनों पश्चात् करना चाहिए। छिड़काव करते समय पत्तियों की निचली सतह पूर्ण रूप से भिगोई जानी चाहिए। क्योंकि शहतूत फसल पर आक्रमण करने वाले अधिकांश कीट पत्तियों की निचली सतह पर ही अपने अण्डे देते हैं।

3. दीमक (टरमाइट) : ये कीट सफेद चींटी के नाम से भी जाने जाते हैं तथा इनका वैज्ञानिक नाम *ओडोनटोटरमाइस* जाति (आइसोपेट्रा: टरमिटिडेइ) है। ये संघजीवी हैं और इनका प्रकोप बहुधा वर्षा आधारित शहतूत बागानों में पाया जाता है। दीमक का आक्रमण सभी प्रकार की मृदाओं में होता है लेकिन इनका अत्यधिक प्रकोप बलुई एवं लाल दुमटी मिट्टी (लोमी) में देखा जा सकता है।

प्रकट होने का समय : इसका प्रकोप वैसे तो पूरे साल रहता है परंतु इनका उग्र रूप अक्तूबर से जून तक रहता है।
लक्षण एवं क्षतिग्रस्त स्वरूप : वयस्क व शिशु कीट शहतूत पौधों की जड़ों एवं छालों को खाते हैं। इससे प्रभावित पौधे सूख जाते हैं और उन्हें खींचने पर आसानी से उखड़ जाते हैं।
जीवन चक्र : इस कीट के नर व मादा पंखयुक्त होते हैं। मादा दीमक रानी के नाम से प्रख्यात होती है तथा हजारों अण्डे देती है जिनका प्रस्फुटन 24-90 दिनों में होता है । इसके लार्वे दिन के समय मिट्टी के ढेलों के नीचे छिपे रहते हैं और रात्रि में पौधों को नुकसान पहुँचाते हैं । वयस्क कीट अनेकों साल जिन्दा रहते हैं।

नियंत्रण के उपाय :

यांत्रिक विधि : दीमक के अण्डों को खोजकर रानी दीमक को नष्ट कर देना चाहिए। सभी प्रकार की सूखी टहनियों को खेतों से निकालकर नष्ट कर दें।
रासायनिक विधि : 0.15 % क्लोरोपाईरीफोस का छिड़काव पौधों के ऊपर करें तथा मिट्टी के ढेलों पर भी जहाँ पर उनका संक्रमण हो, छिड़काव करना चाहिए। सुरक्षा अवधि:15 दिन।

शहतूत की कलमों को नर्सरी या खेतों में रोपने से पहले उनको 0.1 % क्लोरोपाइरीफोस के जलीय घोल में आधे घण्टे तक उपचारित करें ।

नोट : कीटनाशकों के रेशमकीट एवं प्राकृतिक शत्रुओं के ऊपर दुष्परिणामों को देखते हुए शहतूत के बागानों में यांत्रिक एवं जैविक नियंत्रण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए तथा कीटनाशकों का उपयोग कम से कम करने का प्रयास करना चाहिए ।

रेशमकीट के प्रमुख पीड़क एवं उनका प्रबंधन

रेशम कीट को क्षति पहुंचाने वाले अनेक पीड़क कीट होते हैं जिनमें से ऊजी मक्खी एक्सोरिस्टा बाम्बिक्स अधिक महत्वपूर्ण है जो कि रेशमकीट पालन के दौरान कीड़ों पर आक्रमण करती है । ऊजी मक्खी के प्रकोप के फलस्वरूप, भारत के दक्षिणी राज्यों (कर्नाटक, तमिलनाडु एवं आंध्रप्रदेश) में कोसों की फसल में 10-20 % तक का नुकसान देखा जाता है ।

I. नायलोन जाली का प्रयोग :

- नायलोन की जाली/लोहे की जाली को खिड़की एवं दरवाजों पर लगा कर ऊजी मक्खी को रेशमकीट पालन गृह में प्रवेश से रोका जा सकता है ।

- नायलोन की जाली का रेशमकीट पालन गृह के अंदर भी प्रयोग किया जा सकता है । इससे ऊजी प्रकोप को कम करने में सहायता मिलती है ।

II. ऊजी ट्रेप

- यह एक रसायन है जो वयस्क ऊजी मक्खी को आकर्षित कर उसे अपने घोल में डुबोकर मार देती है ।
- प्रत्येक पैकेट में 12 ऊजी टेबलेट होती है ।
- एक लीटर पानी में एक टेबलेट घोल कर इसे सफेद रंग के चौड़े बर्तन/प्लेट में रख देना चाहिए ।
- ऊजी ट्रेप के घोल से भरी हुई सफेद रंग की प्लेट को फर्श से 2-3 फीट ऊपर, खिड़की एवं दरवाजों के पास अंदर व बाहर की तरफ रखना चाहिए ।
- कीड़े की तीसरी अवस्था से लेकर कोसा बनाने की अवस्था तक ऊजी टेबलेट के घोल को रेशमकीट पालन गृह के दरवाजों एवं खिड़कियों के पास रखना चाहिए ।

- ऊजी ट्रेप के प्रयोग से रेशम के कीड़े को किसी प्रकार की हानि नहीं होती है । साथ ही यह पर्यावरण के भी अनुकूल है ।

III जैव नियंत्रक विधि - ऊजी मक्खी के नियंत्रण के लिए निसोलिंक्स थाइमस को छोड़ना

- निसोलिंक्स थाइमस नामक यह परजीवी, ऊजी मक्खी की प्यूपा अवस्था में उसके ऊपर अण्डे देता है । इन अण्डों में से लारवा निकल कर प्यूपा में प्रवेश कर उसे अंदर से खा जाता है ।
- 100 रो मु च के लिए परजीवी की 2 थैलियों की आवश्यकता होती है। यह परजीवी, कीड़े पांचवीं अवस्था में चौथे एवं पांचवें दिन प्यूपा अवस्था से बाहर आना चाहिए ।

जैव नियंत्रक निसोलिंक्स थाइमस

- कीड़ों की चौथी अवस्था में दूसरे दिन इन परजीवियों की थैली को रेशमकीट पालन गृह मे स्टेण्ड के पास रख देना चाहिए ।
- जब रेशम के कीड़े कोसे बनाने की अवस्था में आ जाएँ, तब परजीवी थैलियों को कोसा निर्माण गृह में रख देना चाहिए।
- कोसों की फसल लेने के बाद इन परजीवी थैलियों को खाद के गड्ढे में रख देना चाहिए ।

उक्त विधि को उपयोग में लाने से रेशमकीट पालन गृह के आस-पास परजीवी संख्या बढ़ जाती है तथा ऊजी मक्खी की संख्या कम हो जाती है ।

उपरोक्त वर्णित ऊजी मक्खी के सम्यक प्रबंधन से ऊजी मक्खी का प्रकोप 80-90 % कम हो जाता है, यह प्रायोगिक रूप से सिद्ध हो गया है ।

रेशमकीट पालन में वर्तमान समस्याएं एवं चुनौतियाँ

कणिका त्रिवेदी एवं विनीत कुमार
केंद्रीय रेशम उत्पादन अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, मैसूर

भारत में रेशम उत्पादन न केवल एक परंपरा है, लेकिन यह एक जीवित संस्कृति है। यह एक कृषि आधारित गहन श्रम और व्यावसायिक रूप से आकर्षक आर्थिक, कुटीर और लघु क्षेत्र के अंतर्गत पड़ने वाली गतिविधि है । वर्तमान में, सभी किस्मों की रेशम मांग लगभग 29300 टन है, जिसमें से 20410 टन के आसपास ही (2010-11) देश में उत्पादन किया जाता है और बाकी मुख्य रूप से चीन से आयात किया जा रहा है । यदि इसके उत्पादन को बढ़ाना हमारा मूल उद्देश्य है तो इसके पालन के दौरान आने वाली समस्याओं एवं उसके समाधान के लिए चुनौतियाँ भी स्वीकार करनी होंगी क्योंकि रेशम उत्पादन के लिए रेशम कीड़ों को पालना एक कला और साथ-साथ एक विज्ञान भी है । इसके पालने की विधि को सरल सहज रूप से प्रायोगिक करके जाना जा सकता है । परम्परागत पालन की पद्धति में बहुत सी समस्याएं आती हैं, इन समस्याओं का सामना करने के लिए कई नये तरीकों का आविष्कार किया गया है जिन्हें हम एक-एक कर वर्णन करेंगे।

शहतूती रेशम कीट के प्रकार और संकर

दो प्रकार के शहतूती रेशम कीट होते हैं- बहुप्रज शहतूत रेशम कीट और द्विप्रज शहतूत रेशम कीट । बहुप्रज शहतूत रेशम कीट पीले रंग का रेशम और द्विप्रज शहतूत रेशम कीट सफ़ेद रंग का रेशम उत्पादन करता है । भारतीय घरेलू रेशम बाजार मूल रूप से बहुप्रज शहतूत रेशम के द्वारा संचालित होता है । बहुप्रज शहतूत रेशम कीट से उत्पादित रेशम अपनी घटिया गुणवत्ता के कारण, भारत की अंतरराष्ट्रीय गुणवत्ता के मानक को पूरा नहीं कर सका। अनुसंधान एवं विकास के प्रयासों से वर्तमान में बहुप्रज शहतूत रेशम की गुणवत्ता में सुधार करके एल 14 तैयार किया गया है जिसके उत्पादित रेशम की गुणवत्ता द्विप्रज रेशम की गुणवत्ता से बराबरी कर सकती है । हाल ही में इस नए बहुप्रज x द्विप्रज संकर एल 14 x सी एस आर 2 (चित्र 1) से पुराने पी एम X सीएसआर 2 संकर को प्रतिस्थापित करने की कोशिश जारी है ।

उत्पादन के आधार का विस्तार करने के लिए द्विप्रज रेशम की वर्तमान उत्पादकता के स्तर में सुधार करने के लिए अंतरराष्ट्रीय मानकों और पावरलूम क्षेत्र की गुणवत्ता की मांग को सुनिश्चित करने के लिए पिछले छह दशकों में भारतीय रेशम उद्योग में प्रभावशाली वृद्धि दर्ज की गई है, दोनों क्षैतिज और अनुलंब रूप से केंद्रीय और राज्य एजेंसियों और अनुसंधान और विस्तार के क्षेत्र में समर्पित हजारों व्यक्तियों के अथक प्रयासों के द्वारा कार्यान्वित योजनाओं और अन्य योजनाओं में मदद मिली है । इसमें द्विप्रज x द्विप्रज संकर में सी एस आर 2 x सी एस आर 4 (चित्र 2) का योगदान सराहनीय है (कवच अनुपात 23.0%, कच्चा रेशम 19-20%, औसत कोसा/उपज 70-80 किग्रा; रेंडीटा 5.5 से 5.2 और रेशम ग्रेड 3 ए-4 ए) जिसने पुराने केए x एनबी4 डी2 को भुला दिया। इस द्विप्रज x द्विप्रज संकर को अनुकूल महीनों (सितम्बर से फरवरी) के दौरान पाला जाता है । आधुनिक अनुसंधान एवं विकास के प्रयासों से द्विप्रज द्विगुण संकर (सीएसआर 6 x सीएसआर 26) x (सीएसआर 2 x सीएसआर 27) का भी उत्पादन किया जा रहा है जिसे हम हर वातावरण में पूरे वर्ष भी पाल सकते हैं। इस द्विप्रज द्विगुण संकर में गुणवत्ता के साथ-साथ अण्डों की संख्या अधिक होती है इससे अंडे की उच्च वसूली (10 -15% अधिक) होती है, तथा ये द्विप्रज x द्विप्रज संकर से अधिक प्रतिकूल वातावरण के सहनशील होने के कारण उत्पादन अधिक देते हैं ।

नए शहतूती पौधों का विकास

रेशम कीट का उत्पादन यदि बढ़ाना है तो उत्तम गुणवत्ता वाले नए शहतूत की किस्मों को भूल नहीं सकते हैं, 20 वर्ष पहले सिर्फ केए, एस 36 जैसी किस्में हमारे पास थीं जो लोकल शहतूत से अच्छी थीं, लेकिन वी1 क़िस्म के आने से रेशम के उत्पादन में चार चाँद लगे, अब तो इससे भी अधिक गुणवत्ता वाले नए शहतूत की किस्मों पर अनुसन्धान चल रहा है व आने वाले समय में रेशम उद्योग के लिए बहुत लाभकारी होगा ।

रेशम उत्पादन

रेशम उत्पादन उद्योग में कच्चे रेशम उत्पादकता में एक छलांग देखी गई है । पहले 25 किलोग्राम की औसत कोसा उपज/100 डी एफ एल एस में मिलती थी जो कि बढ़ कर वर्तमान में औसत पैदावार 60 किलोग्राम की रेंज में है (65 किलोग्राम/100 डी एफ एल एस)। पैदावार में दोहरीकरण के अलावा नई तकनीकियों से काफी कम रेंडीटा के साथ रेशम के उत्पादन में गुणात्मक सुधार हुआ है ।

रेशमकीट पालन में नई तकनीकियों का प्रयोग

रेशम कीट के जीवन में पांच अवस्थाएं होती हैं । अंडे से निकलने के बाद पहली अवस्था जो तीन दिनों की होती है, इसके बाद यह पहले निर्मोचन में बैठता है जो एक दिन का होता है, दूसरी अवस्था ढाई दिनों की होती है फिर दूसरा निर्मोचन एक दिन का, तीसरी अवस्था तीन दिनों की, फिर तीसरा निर्मोचन एक दिन का। पहली और दूसरी अवस्था को चॉकी अवस्था कहते हैं, इसमें कीटों को अधिक तापमान और आर्द्रता चाहिए जबकि तीसरी अवस्था परिवर्तन की अवस्था कहलाती है । निर्मोचन की अवस्था में यह खाना बंद कर अपनी पुरानी त्वचा को निकाल कर नई ढीली त्वचा धारण करता है और हर अवस्था में यह पहले की अवस्था से अधिक भोजन ग्रहण करता है और नई त्वचा के अनुरूप बड़ा होता जाता है।

चॉकी रेशम कीट पालन

अंडों का परिवहन **:** अण्डों को एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाते समय 25-26° से. तापमान तथा 80-90% आर्द्रता रखनी चाहिए, इसके लिए प्रात: काल या सायं काल का समय उपयुक्त होता है। अंडा परिवहन बैग का उपयोग रेशमकीट अंडे के परिवहन के दौरान इष्टतम पर्यावरणीय शर्तों को प्रदान करता है ।

मुक्त अंडों के लिए ऊष्मायन फ्रेम : मुक्त अंडों को ऊष्मायन फ्रेम (चित्र 3) में फैलाकर रखने से, ऊष्मायन के समय इष्टतम पर्यावरणीय स्थितियाँ प्रदान होती हैं । कम लागत के इन ऊष्मायन तख्तों को रेशमकीट अंडे के ऊष्मायन के लिए जरूर प्रयोग में लाना चाहिए।

अंडों को काले कपड़े से ढकना : अंडों को नीले रंग के होने पर काले कपड़े (चित्र 4) से जरूर ढकना चाहिए जिससे उनका स्फुटन एक साथ हो।

प्लास्टिक ट्रे का प्रयोग : चॉकी के लिए प्लास्टिक ट्रे (चित्र 5) का प्रयोग करें जिन्हें धोना एवं रोगाणु मुक्त करना सरल होता है ।

नमी बचाने की पद्धति : चॉकी दौरान पॉलिथीन शीट (चित्र 6) ट्रे में जरूर बिछायें जिससे पत्ती जल्दी सूखे नहीं, पॉलिथीन शीट को धोकर फिर से काम में ला सकते हैं जिससे कीट पालन में लागत कम हो जाती है। नमी बचने के लिए एक और पद्धति उपयोग में ला सकते है इसमें 15-20% की नमी को बढ़ाने के लिए आयल कागज के सभी चार पक्षों को पालन बिस्तर से जोड़ देते हैं, इस तकनीक से अतिरिक्त 3-4 किलो/100 डीएफएलएस अधिक कोसा उत्पादन होता है ।

चॉकी पत्ती का संरक्षण : चॉकी पत्ती के संरक्षण के लिए एक साधारण उपकरण (चित्र 7) बना सकते हैं जो एक आयताकार बांस ट्रे, बांस की चटाई और एक केंद्रीय कीप से बना होता है, यह चॉकी पत्तों को 10-12 घंटे के लिए पत्तों की गुणवत्ता और पत्ती ढुलाई में किसी भी गिरावट के बिना रक्षा कर सकता है।

चॉकी के दौरान तापमान तथा आर्द्रता

चॉकी के दौरान तापमान 27-28°से. तथा आर्द्रता 80-85% रहना लाभकारी है ।

चॉकी के दौरान आवश्यक जगह का लेखा

पहली अवस्था में 100 रोग मुक्त बीज चकतों से निकले लार्वों को 25 वर्ग फुट तथा दूसरी अवस्था में 50 वर्ग फुट जगह देकर पालना चाहिए जिससे उनकी वृद्धि अच्छी एवं एक समान होती है और सभी कीटों को एक-समान आहार मिल जाता है ।

चॉकी रेशमकीट पालन के लिए कृत्रिम आहार का प्रयोग

चॉकी रेशमकीट पालन के लिए कृत्रिम आहार (चित्र 8) का प्रयोग किया जा सकता है। कहीं से भी प्राप्त बहुप्रज x द्विप्रज संकर (पीएम x सीएसआर 2, पीएम x एनबी4 डी2) आदि के चॉकी पालन के लिए कृत्रिम आहार एक उपयुक्त पालन पद्धति है, जो बाजार में उपलब्ध है । द्विप्रज x द्विप्रज संकर के लिए कृत्रिम आहार पर तैयार द्विप्रज x द्विप्रज संकर अंडे उपलब्ध हैं जिन्हें बाजार में उपलब्ध कृत्रिम आहार पर पाला जा सकता है । अर्ध संश्लेषित कृत्रिम आहार पर कीट पालन करने से प्रथम एवं द्वितीय अवस्था के कीटों को खो जाने से बचाया जा सकता है। स्वस्थ कीटों को तृतीय अवस्था से कोसाकरण तक पत्ता खिलाने से भोज्य पत्तों में भी बचत होती है । कृत्रिम आहार पर कीट पालन करने से चॉकी कीटों को सन्तुलित भोजन मिलता है जिससे फसल अच्छी होती है । सफाई से चॉकी कीट पालन करने के कारण उत्तरी अवस्था में रोगों का प्रकोप कम हो जाता है । कोसों की संख्या प्रति रोग मुक्त बीज चकते में बढ़ जाती है ।

वयस्क/प्रौढ़ रेशम कीट पालन

तीसरे से पांचवीं अवस्था के कीट पालन को वयस्क/प्रौढ़ रेशम कीट पालन भी कहते हैं । इस समय कीटों को कम तापमान और आर्द्रता चाहिए । तीसरे निर्मोचन से निकल कर लार्वा चौथी अवस्था में चला जाता है, यह अवस्था चार दिनों की होती है, फिर यह चौथे और अंतिम निर्मोचन में बैठता है जो डेढ से दो दिनों तक होती है । चौथे निर्मोचन से निकल कर पांचवीं और अंतिम अवस्था में पहुँच जाता है । यह अवस्था 6-7 दिनों की होती है, इसके बाद यह कोसा बनाने में जुट जाता है। परिपक्व अवस्था में एक लार्वे का वजन अंडे से निकलने के बाद कुल 23-25 दिनों में 10,000 गुना बढ जाता है । कोसा के अन्दर दो दिनों में प्यूपा बन जाता है, जिसे मोथ बनने में 10-12 दिन लगते हैं, वह कोसा काट कर बाहर निकल आता है । बाहर नर तथा मादा के संयोग से, मादा फिर 400-500 अंडे देती है । मोथ 3-4 दिनों तक जीवित रहती है ।

प्ररोह कीट पालन विधि

20 वर्ष पहले बांस से बने गोल ट्रे पर रेशम कीटों का पालन करने का प्रचलन था, जिनका अधिक जगह लेने के अलावा ठीक से सफाई और रोगाणु मुक्त करना मुश्किल था, जिनकी जगह अब बांस से बने कम लागत के स्टैंड ने ले ली है जिसमें रस्सियों के सहारे जाल के ऊपर अख़बार बिछा कर वयस्क/प्रौढ़ रेशम कीटों का पालन करते हैं । कीटों के आहार में कटी पत्तियों की जगह शहतूत की शाखाओं ने ले ली है, जल्दी सूखने के कारण कटी पत्तियों का आहार चार बार दिया जाता था जबकि शहतूत की शाखाओं का आहार दिन में दो बार दिया जाता है, पांचवीं अवस्था के 2-4 दिन तक तीन बार आहार देने से अधिक उत्पादन की आशा रहती है क्योंकि उस समय कीट अधिक मात्रा में भोजन ग्रहण करता है । इसे प्ररोह कीट पालन विधि (चित्र 9) भी कहते हैं । इस विधि में कामगारों की संख्या कम लगती है । अत: लागत एवं श्रम की काफी बचत होती है । इस विधि में शय्या की सफाई की आवश्यकता नहीं होती। द्विप्रज x द्विप्रज संकर कीटपालन के लिए 100 रो मु च के लिए 3500 किग्रा शहतूत शाखाओं या प्ररोहों की आवश्यकता होती है । पत्तों के हिसाब से 1600 किग्रा पत्ते लगते हैं ।

वयस्क/प्रौढ़ रेशमकीट पालन के दौरान तापमान तथा आर्द्रता : तापमान और आद्रता थोडा कम रखा जाये (25-26° से. तथा 65-70%) तो कीट पालन और अच्छा होता है ।

वयस्क/प्रौढ़ रेशमकीट पालन में आवश्यक जगह का लेखा

वयस्क/प्रौढ़ रेशम कीट पालन में लार्वे को आवश्यकतानुसार जगह देनी चाहिए जिससे उनके विकास के लिए पर्याप्त भोजन और हवा मिले। तीसरी अवस्था में 100 रोग मुक्त अंडों को 100-200 वर्ग फुट, चौथी अवस्था में 200-400 वर्ग फुट तथा पांचवीं अवस्था में 400-800 वर्ग फुट स्थान देना चाहिए। इससे हम अच्छी गुणवत्ता वाले कोसों का उत्पादन कर सकते हैं ।

समृद्धि का प्रयोग

समृद्धि एक कीट किशोर हार्मोन का तुल्य रूप है, रासायनिक अणु की संरचना अंतर्जात किशोर हार्मोन से भिन्न है, लेकिन उसका कार्य रेशमकीट किशोर हार्मोन के समान है । लार्वे के चर्म पर ऊपर से इसका अनुप्रयोग किया जाता है । समृद्धि का प्रयोग पाँचवें निरूप में 2-3 दिन के अंदर ही करना पड़ता है । अत: लार्वे का लक्षण अतिरिक्त आधे से एक दिन के लिए जारी रहेगा और लार्वे अधिक पत्ती खाकर अधिक रेशम उत्पादित करते हैं। कोसा हृष्ट-पुष्ट और भारी हो जाता है। कोसा वजन में 12-15% वृद्धि होती है । कोसा कवच वजन में 8-10% वृद्धि होती है । कीटपालक को बाजार में कोसों का दाम लगभग प्रति किग्रा के लिए रु 5 अधिक मिलता है । उपचारित प्रत्येक 50 किग्रा कोसे के लिए 0.7 किग्रा अधिक रेशम प्राप्त होता है ।

सम्पूर्णा का प्रयोग

सम्पूर्णा, निर्मोक हार्मोन या 20 हाइड्रॉक्सी इक्डाईसॉन पादप आधारित सामग्री है और समजात/समरूप संरचना के रूप में पाया जाता है । यह प्रकृति के ध्रुवीय (पानी में घुल मिल जाता है) है और इसे पानी में मिलाकर शहतूत पत्तियों के माध्यम से रेशमकीट को खिलाया जा सकता है । इसका अनुप्रयोग पालन अवधि को छोटा करता है, 48-72 घंटों के स्थान पर 18-24 घंटे में कताई पूर्ण करता है । एक समान कताई मिलने हेतु लार्वे पूरे परिपक्व होने पर ही संपूर्णा का अनुप्रयोग किया जाए (3 से 5 चंद्रिके कीटों का प्रतिस्थापन करने के बाद)। संपूर्णा का बहिर्जात अनुप्रयोग कताई के लिए अपेक्षित ई सी डी स्तर को चरमसीमा पर लाता है । कोसा गुणवत्ता मानक कोसा के जैसा अच्छा मिलता है । यदि कृषक वर्ग रोग प्रकोप या पत्तियों की कमी के कारण शीघ्र ही परिपक्वता (पाँचवें निरूप के 3 से 5 दिवस में) लाने हेतु संपूर्णा का उपयोग कर रहा है तो पाँचवें निरूप में 3 दिन खिलाने के बाद संपूर्णा का पहला छिड़काव पत्तों पर कर खिलाना चाहिए और कताई प्रारंभ होने पर दूसरा (पत्ते पर) छिड़काव कर खिलाना चाहिए । अत: संपूर्णा के दो बार पत्ते पर छिड़काव कर खिलाने की सिफारिश की जाती है । त्वरित कोसाकरण एवं प्यूपीकरण से चौथे दिन कोसों को चंद्रिका से निकालकर पाँचवें दिन बाजार ले जा सकते हैं। प्यूपीय दर अधिक होने के कारण कोसा उपज में न्यूनतम वृद्धि होती है । चंद्रिके पर लार्वे की मृत्युदर कम होती है । उपचार न किए गए बैच की तुलना में कोसा मूल्य अधिक मिलता है ।

इस तरह जब कृषक के पास शहतूत के पत्ते अधिक मात्रा में उपलब्ध हों तो वे रेशमकीट के खाने की अवधि 'समृद्धि' से बढ़ाकर अधिक मात्रा में कोसा/रेशम प्राप्त कर सकते हैं और 'संपूर्णा' से कताई की अवधि घटाकर थोड़े समय में अच्छे कोसे प्राप्त कर सकते हैं । दोनों हार्मोनों का प्रयोग एक साथ एक ही फसल में आसानी से किया जा सकता है (चित्र 10) ।

रंगीन गुलाबी प्राकृतिक रेशम

वैज्ञानिकों ने गुलाबी रंग को पांचवीं अवस्था के लार्वों को अंतिम दिनों में आहार के साथ खिलाकर गुलाबी रंग के कोसों का उत्पादन किया है जो रेशम का गोंद (सेरिसिन) निकालने के बाद तथा कपडा तैयार होने के बाद भी पक्का रंग बना रहता है, इसमें रेशम को बाद में रंगना नहीं पड़ता है (चित्र 11)।

परिपक्व कीटों को पत्तों से अलग करना

परिपक्व कीटों को पत्तों से अलग करने के लिए जोबराइ विधि का आविष्कार किया गया है। इसमें श्रम तथा समय की 20% बचत होती है तथा समय से कोसा बनाने के कारण, कोसे की गुणवत्ता बनी रहती है ।

कोसा निर्माण और चंद्रिके

पाँचवीं अवस्था समाप्त होते ही कीट पत्ती खाना कम कर देते हैं वे अपने शरीर के अग्र भाग को उठा लेते हैं तथा सिर को चारों तरफ घुमा-घुमा कर सहारा खोजते हैं । इस समय इनको उठा कर उपर्युक्त चंद्रिके में डाल देने से गुणवत्ता युक्त कोसे बनते हैं, नहीं तो रेशम व्यर्थ कर देते हैं । कई तरह के चंद्रिके होते हैं-बांस के बने स्थानीय चंद्रिके (चित्र 12), प्लास्टिक के मुडने वाले चंद्रिके या नेत्रिके (चित्र 13), जापानी प्रकार के रोटरी चंद्रिके (चित्र 14), कार्डबोर्ड एवं बांस के बने चंद्रिके, शय्या पर रखे जाने वाले नए रोटरी चंद्रिके। रोटरी चंद्रिके वाले कोसों का आकार एक समान होता है, इसलिए इससे उत्पादित कोसे का दाम अधिक प्राप्त होता है । अधिकतर किसान प्लास्टिक के मुडने वाले चंद्रिके या नेत्रिके का प्रयोग करते हैं, उन किसानों को इन नेत्रिकों की सफाई के लिए 2% ब्लीचिंग के घोल में 2-3 दिन डुबा कर रखना पड़ता है । इसके बाद जब सब पुराने कोसो के रेशे गल जाते हैं, साफ पानी में धोया जाता है, सूखे चंद्रिकों को एक विशेष ढंग से मोड़ कर रखना चाहिए जिससे कोसों के आकार में अंतर न आये, इसके लिए एक बहुत ही साधारण सी मशीन का प्रयोग करते हैं । बांस के बने स्थानीय चंद्रिके भी अच्छे होते हैं परन्तु इसकी सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए, आग से पुराने रेशों को निकाला जाता है, नहीं तो बीमारी फैलती है ।

इस प्रकार औसत पैदावार के दोहरीकरण के लिए अनुसंधान एवं विकास के प्रयासों से, नई तकनीकियों से, नई गुणवत्ता वाली संकर प्रजातियों से, नई शहतूत की जातियों से काफी कम रेंडीटा के साथ रेशम के उत्पादन में गुणात्मक सुधार हुआ है और देश का हर वैज्ञानिक हर चुनौती का सामना करने को तत्पर है ।

चित्र 1: नया बहुप्रज x द्विप्रज संकर एल 14 x सी एस आर 2 (L14 x CSR2)

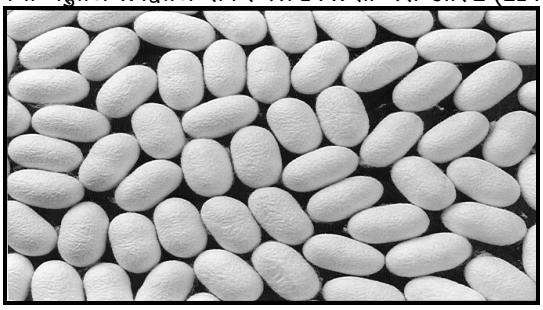

चित्र 2 : द्विप्रज x द्विप्रज संकर सी एस आर 2 x सी एस आर 4 (CSR 2 x CSR 4)

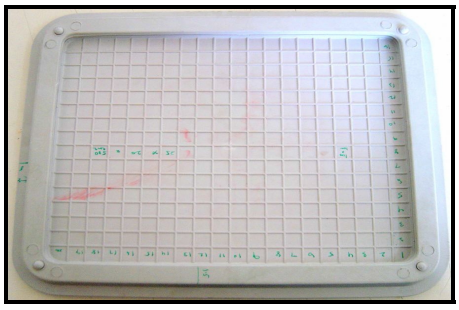

चित्र 3 : मुक्त अंडों के लिए ऊष्मायन फ्रेम

चित्र 4 : अंडों को काले कपड़े से ढकना

चित्र 5: प्लास्टिक ट्रे का प्रयोग

चित्र 6: नमी बचाने की पद्धति - पॉलिथीन शीट

चित्र 7: चॉकी पत्ती का संरक्षण

चित्र 8: चॉकी रेशम कीट पालन के लिए कृत्रिम आहार का प्रयोग

चित्र **9:** प्ररोह कीट पालन विधि

चित्र 10

चित्र

11: रंगीन गुलाबी प्राकृतिक रेशम

चित्र 12: स्थानीय चंद्रिके चित्र 13: प्लास्टिक के चंद्रिके चित्र 14: जापानी रोटरी चंद्रिके

रेशमकीट के रोग एवं उनका एकीकृत प्रबंधन

एस डी शर्मा, बालवेंकट सुब्बया एम, ए आर नरसिंह नायक एवं के चन्द्रशेखरन
केंद्रीय रेशम उत्पादन अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, मैसूर

प्रस्तावना **:**

रेशमकीट पालन रेशम उद्योग में एक अत्यंत महत्वपूर्ण क्रियाकलाप है । इसके अंतर्गत रेशम कोसे प्राप्त करने के लिए रेशम कीटों का पालन करना होता है । ये कीड़े शहतूत के पत्ते पर पाले जाते हैं क्योंकि यही इनका एकमात्र भोजन है । रेशम के कीड़े पालने वाले किसानों को "रेशम कृषक" कहते हैं । भारत के अनेक भागों में रेशमकीट पालने का कार्य परंपरागत ढंग से किया जाता है जैसे कि कश्मीर, बंगाल, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश एवं तमिलनाडु । रेशम कृषक रेशम के कोसे बनाकर उन्हें उचित दर पर कोसा बाजार में बेचकर धनार्जित करते हैं । अधिकांश रेशम कृषक रेशमकीट पालन करके ही अपनी जीविका चलाते हैं परंतु कुछ कृषक रेशमकीट पालन के साथ अन्य प्रकार की फसलें भी उगाते हैं ।

अन्य व्यवसायों की तरह रेशमकीट पालन में भी कुछ जोखिम होते हैं इनमे से सबसे प्रमुख कीड़ों मे आने वाली बीमारियों से होने वाला नुकसान है । इन्हीं बीमारियों के कारण रेशम कोसों की उत्पादकता एवं उनकी गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा कोसों की पैदावार में काफी कमी आती है । एक अनुमान के अनुसार औसतन प्रति वर्ष 20-25 % फसल इन रोगों के कारण नष्ट हो जाती है ।

रेशमकीट रोग **:**

रेशमकीट में आने वाली प्रमुख बीमारियां निम्नलिखित हैं :

1. ग्रैसरी **:** यह एक वायरस जन्य बीमारी है । यह अपने विशिष्ट लक्षणों द्वारा आसानी से पहचानी जा सकती है । प्रभावित कीड़े बैचेनी की स्थिति में शय्या के अंदर इधर-उधर घूमते हैं । अन्तर्खण्डीय भाग फूल जाता है, त्वचा मुलायम कमजोर होकर फट जाती है । इससे एक सफेद दूधिया रंग का द्रव निकलता है जिसे प्रभावित कीड़े इधर-उधर घूम कर पूरी शय्या में बिखेर देते हैं । इस द्रव का यदि सूक्ष्मदर्शी में परीक्षण किया जाए तो हजारों लाखों की संख्या में प्रोटीन निर्मित पोलीहेड्रल बॉडी दिखाई देती हैं, जिनके अंदर छडीकार वायरस पाये जाते हैं । ये वायरस डी एन ए युक्त होते हैं तथा कीड़े के रक्त की कोशिकाओं में पनपते हैं । इस बीमारी से रेशम कृषकों को काफी परेशानी का सामना करना पड़ता है ।

ग्रैसरी प्रभावित रेशमकीट

2. फ्लेचरी **:** यह रेशमकीट का एक प्रमुख रोग है तथा वायरस अथवा बैक्टीरिया सम्बद्ध रोगाणुओं के संक्रमण द्वारा फैलता है । चूंकि अधिकांश मामलों में इसके कारक रोगाणु का पता नहीं चल पाता है, अत: इसे एक सिन्ड्रोम के रूप में जाना जाता है । द्विप्रज प्रजाति के कीड़ों में इस बीमारी का प्रकोप अधिक देखा गया है, विशेषकर अधिक आर्द्रता वाली वातावरणीय परिस्थितियों में । इस बीमारी से ग्रसित कीड़े शहतूत की पत्ती खाना कम कर देते हैं । बढ़त कम हो जाती है तथा वे मुलायम हो जाते हैं । पाचन क्रिया खराब हो जाने के कारण उल्टी तथा दस्त जैसे लक्षण दिखाई पड़ते हैं । अन्तत: कीड़ा मर जाता है । स्ट्रेप्टोकोकस, स्टेफिलोकोकस, सीरेसिया मरसेसेन्स, नेसोलस थूरिन्जैन्सिस बैक्टीरिया से अलग-अलग प्रकार की फ्लैचरी होती है ।

पाचन तंत्र की बैक्टीरियाजन्य बीमारियां

बैक्टीरियाजन्य टोक्सिकोसिस

बैक्टीरियाजन्य सेप्टीसीमिया

इन्फेक्सियस फ्लेचरी वायरस प्रभावित रेशमकीट

बैक्टीरिया के अलावा दो प्रकार के वायरस भी बी एम आई एफ वी तथा बी एम डी एन वी रेशमकीट में वायरल फ्लैचरी के लक्षण पैदा करते हैं ।

3. मस्कार्डिन **:** मस्कार्डिन फफूंद से होने वाला रोग है जो कि सर्दी एवं बरसात के दिनों में अधिकांश पाया जाता है । सफेद मस्कार्डिन एवं हरी मस्कार्डिन अत्यंत सामान्य रूप से पाए जाते हैं । यह छूत की बीमारी है तथा संपर्क अथवा रोगाणुओं के हवा के माध्यम से प्रसार के कारण होता है । संक्रमण के 4-5 दिनों के अंदर कीड़े में बीमारी के लक्षण प्रकट होते हैं । अन्ततः कीड़ा मर कर कठोर चाक की तरह हो जाता है तथा सफेद या हरी फफूंद से ढक जाता है । ओक्सेलेट क्रिस्टल्स की उपस्थिति के कारण ही मृत कीड़ा कठोर हो जाता है । सफेद मस्कार्डिन *बीवेरिया बेसियाना* तथा हरी मस्कार्डिन, *स्पाइकेरिया प्रेसिना* नामक फफूंद से होती है ।

4. पेब्रिन **:** यह रेशमकीट की सबसे खतरनाक बीमारी मानी जाती है । इसका सबसे बड़ा कारण है तीव्र प्रसार । यदि इसे ऐसे ही छोड़ दिया जाए तो यह अत्यंत तेजी से अन्य स्थानों में भी फैल जाती है । यदि मादा तितलियों में यह बीमारी हो तो उनके अण्डों के माध्यम से यह बीमारी सब क्षेत्रों में पहुँच जाती है जहां अण्डे वितरित होते हैं । इस बीमारी का कारक नोजीमा बोम्बाइसिस नामक रोगाणु होता है जो कि माइक्रोस्पोरिडिया फाइलम से संबंधित है ।

इस बीमारी के प्रमुख लक्षणों में निर्मोचन में देर से बैठना, निर्मोचन की अवधि बढ़ जाना तथा शय्या में अलग-अलग आकार के कीड़ों की उपस्थिति प्रमुख है । इस बीमारी में मादा द्वारा दिए जाने वाले अण्डों की संख्या में भी कमी आती है । इस प्रकार के कीड़े यदि सूक्ष्मदर्शी द्वारा परीक्षण किए जाएं तो अण्डाकार स्पोर दिखाई देते हैं जिनसे इस बीमारी की पुष्टि हो जाती है ।

पेब्रिन प्रभावित रेशमकीट

रेशमकीट की बीमारियों का सम्यक प्रबंधन **:**

जैसाकि विदित है, रेशमकीट की सभी प्रमुख बीमारियाँ रोगाणुओं से होती हैं एवं ये रोगाणु कीटपालन शय्या, रेशमकीट पालन गृह एव अन्य उपकरणों के दूषित होने से फैलते हैं । अतः बीमारियों के सम्यक प्रबंधन के लिए तीन मुख्य विधियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं ।

क) रोकथाम के द्वारा
ख) उपचार के द्वारा
ग) रोग प्रतिरोधी प्रजातियाँ विकसित करके

निःसंक्रमणकारी पाउडर का छिड़काव

अ**)** रोकथाम के उपाय **:**

रोकथाम के उपायों में रोगाणुनाशक रसायानिक द्रवों का उपयोग किया जाता है । मुख्य रोगाणुनाशक द्रव निम्न प्रकार हैं :

1. फार्मलिन **:** तीक्ष्ण गंध वाला एक रंगहीन द्रव है । बाजार में इसका प्रतिशत 36-38% होता है । यह रोगाणुओं को क्रमशः कम करते-करते नाश करता है । विसंक्रमण के लिए 2% द्रव का उपयोग किया जाता है । यह निम्न सूत्र से तैयार किया जा सकता है ।

उपलब्ध सांद्रता - आवश्यक सांद्रता
---------- = एक भाग फार्मलिन के लिए पानी के भाग की मात्रा
आवश्यक सांद्रता

उदाहरण : 2% फार्मलिन बनाने के लिए

उपलब्ध सांद्रता 36%		आवश्यक सांद्रता 2%		
36 - 2		34	17	भाग पानी
--------	=	-----	=	------
2		2	1	भाग फार्मलिन

हाल ही में फार्मेलिन का प्रयोग काफी कम हो गया है, क्योंकि यह हमारे स्वास्थ्य के लिए घातक है । साथ ही प्रभावी विसंक्रमण के लिए कीटपालन गृह को पूरी तरह से वायु अवरूद्ध करना तथा तापमान 25 सें या अधिक होना आवश्यक है । अधिकांश परिस्थितियों में अत्यंत तीक्ष्ण गंध होने के कारण किसानों को इसका प्रयोग करने में बहुत कठिनाई होती है । केवल अण्डों के सतही विसंक्रमण के लिए इसका प्रयोग किया जाता है ।

2. ब्लीचिंग पाउडर **:** 0.3% बुझे चूने के घोल में 2% ब्लीचिंग पाउडर ।

रेशमकीट गृह एवं उपकरणों का नि:संक्रमण करते हुए

निम्नलिखित सारणी से 1 लीटर घोल बनाने के लिए आवश्यक ब्लीचिंग पाउडर तथा चूने के पाउडर की मात्रा ज्ञात की जा सकती है ।

सारणी 1 : 1 लीटर घोल बनाने के लिए आवश्यक ब्लीचिंग पाउडर तथा चूने के पाउडर की मात्रा ।

पदार्थ	आवश्यक मात्रा (100 लीटर घोल के लिए)	
	1 लीटर के लिए	1 लीटर के गुणांक के लिए
ब्लीचिंग पाउडर	0.020 कि ग्रा	0.020 x * = ... कि ग्रा
बुझा चूना पाउडर	0.003 कि ग्रा	0.003 x * = ... कि ग्रा
पानी	1.000 लीटर	1.000 x * = ... कि ग्रा

* तैयार किए जाने वाले घोल की मात्रा (लीटर में)

घोल बनाने के लिए पहले ब्लीचिंग पाउडर तथा चूना पाउडर में थोड़ा पानी डाल कर लेई (पेस्ट) बना लेते हैं तत्पश्चात् उसे शेष पानी में अच्छी तरह से मिला लेना चाहिए । याद रहे कि ब्लीचिंग पाउडर के प्रयोग से कीटपालन गृह में लोहे आदि धातुओं में जंग लग जाती है तथा यह कपड़ों पर भी बुरा असर डालता है ।

3. 2.5% सेनिटेक/सेरीक्लोर का 0.5% बुझे चूने में घोल : एक लीटर सेनिटेक का घोल तैयार करने के लिए आवश्यक पदार्थों की मात्रा सारणी 2 में दर्शाई गई है। सारणी - 2

पदार्थ	आवश्यक मात्रा (100 लीटर घोल के लिए)	
	1 लीटर के लिए	1 लीटर के गुणांक के लिए
सेनिटेक/सेरिक्लोर	0.025 लीटर	0.025 x * = ... लीटर
सक्रियक	0.0025 कि ग्रा	0.0025 x * = ... लीटर
बुझा चूना पाउडर	0.005 कि ग्रा	0.005 x * = ... लीटर
पानी	0.975 लीटर	0.975 x * = ... लीटर

क्लोरीन डाइआक्साइड का घोल बनाना

बाजार में सेनिटेक अथवा सेरिक्लोर 5 लीटर का डब्बा अथवा 500 मि ली बोतल में उपलब्ध है। प्रत्येक 500 मि ली सेनिटेक/सेरिक्लोर के लिए 50 ग्राम सक्रियक के पैकेट साथ में मिलता है । सेनिटेक या सेरिक्लोर का घोल बनाने के लिए यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पहले इसके घोल को सक्रिय किया जाए । सक्रिय करने के लिए प्रत्येक 500 मि ली सेनिटेक/सेरिक्लोर को 50 ग्राम सक्रियक के साथ अलग से मिलाना चाहिए । इसके हिलाकर 5-10 मिनट तक ऐसे ही छोड़ने के बाद इसे आवश्यक मात्रा में पानी में मिलाते हैं । तत्पश्चात् इसमें चूने का पाउडर डाल कर हिला लेते हैं । इस प्रकार से सेनिटेक या सेरिक्लेर का घोल तैयार हो जाता है ।

4. अस्त्रा **:** यह संस्थान द्वारा हाल ही में विकसित एक नया नि:संक्रमणकारी पदार्थ है । यह बहुत कम मात्रा में भी अत्यंत प्रभावशाली रोगाणुनाशक है । रोगाणुनाशन के लिए इसका 0.05% पानी में घोल बनाया जाता है । कम घुलनशीलता के कारण इसे घुलने में 2 घंटे तक समय लग जाता है। अत: पानी में घोल बनाने के पश्चात् इसे 2 घंटे पूरी तरह घुलने के लिए छोड़ देते हैं । उसके बाद ही इसका नि:संक्रमण के लिए प्रयोग करते हैं । अस्त्रा का 100 लीटर घोल बनाने के लिए 100 लीटर पानी में 50 ग्राम अस्त्रा का प्रयोग होता है।

5. बुझे चूने का 0.3% घोल :

100 लीटर बुझे चूने का घोल बनाने के लिए 300 ग्राम बुझे चूने की आवश्यकता होती है । यदि पिछली फसल में वायरस जन्य बीमारियों जैसे ग्रेसरी अथवा वायरल फ्लेचरी का अधिक प्रकोप हुआ हो तो इस घोल को ऐच्छिक रूप से नि:संक्रमण के लिए प्रयोग कर सकते हैं ।

नि:संक्रमणकारी घोल की आवश्यक मात्रा का निर्धारण निम्न प्रकार किया जा सकता है ।

कीटपालन गृह की ऊँचाई	प्रति वर्ग फुट फर्श फ्लोर के लिए घोल की आवश्यक मात्रा
10 फुट	.140 लीटर/प्रति वर्ग फुट फर्श क्षेत्रफल
11 फुट	.154 लीटर/प्रति वर्ग फुट फर्श क्षेत्रफल
12 फुट	.168 लीटर/प्रति वर्ग फुट फर्श क्षेत्रफल
13 फुट	.182 लीटर/प्रति वर्ग फुट फर्श क्षेत्रफल
14 फुट	.196 लीटर/प्रति वर्ग फुट फर्श क्षेत्रफल
15 फुट	.210 लीटर/प्रति वर्ग फुट फर्श क्षेत्रफल

उदाहरण : 100 वर्गफुट फर्श क्षेत्रफल (फ्लोर एरिया) वाले रेशमकीट पालन गृह जिसकी ऊँचाई 11 फुट है, उसके नि:संक्रमण के लिए 100 x 0.154 = 15.4 लीटर नि:संक्रामक घोल की आवश्यकता होगी ।

अलग-अलग प्रकार के घरों के लिए उनकी ऊँचाई निम्न प्रकार से नापी जा सकती है :

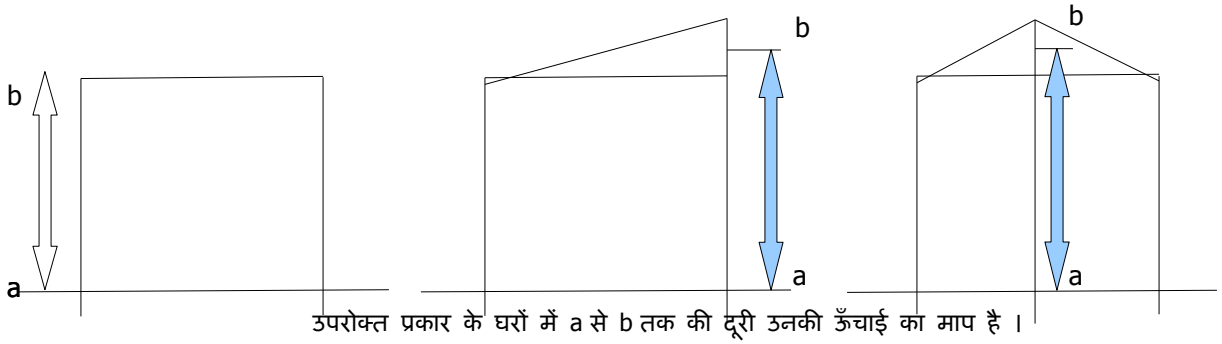

उपरोक्त प्रकार के घरों में a से b तक की दूरी उनकी ऊँचाई का माप है ।

उपरोक्त विधि से प्राप्त नि:संक्रामक घोल की मात्रा का 10 % अधिक घोल तैयार करना चाहिए जिससे कीटपालन गृह का प्रवेश क्षेत्र अथवा थोड़ा बहुत बाहर से भी नि:संक्रमण किया जा सके ।

शय्या नि:संक्रमणकारी : रेशमकीट पालन के दौरान रोगों के प्रसार को रोकने के लिए शय्या नि:संक्रमणकारियों का प्रयोग किया जाता है। इनके उपयोग के लिए निर्धारित समय तालिका निम्नलिखित है :

शय्या नि:संक्रमणकारी का छिड़काव

सारणी : शय्या नि:संक्रमणकारियों के उपयोग की समय तालिका

नाम	समय तालिका
अंकुश/विजेता ग्रीन	प्रत्येक ज्वरावस्था के पश्चात् तथा पांचवीं अवस्था में तीसरे एवं पांचवें दिन
विजेता	प्रत्येक ज्वरावस्था के पश्चात् तथा पांचवीं अवस्था में चौथे दिन
विजेता सप्लीमेंट	चौथी अवस्था में तीसरे दिन तथा पांचवी अवस्था में दूसरे और छठे दिन । यह विजेता की सामान्य 5 बार उपयोग के अतिरिक्त होती है ।

विजेता विजेता सप्लीमेंट अंकुश

अंकुश तथा विजेता रेशमकीट की सभी बीमारियों की रोकथाम के लिए उपयोग में लाया जाता है परंतु विजेता सप्लीमेंट केवल मस्कार्डिन की रोकथाम एवं नियंत्रण के लिए होता है । प्ररोह कीटपालन विधि में 3-5 ग्राम प्रति वर्गफुट शय्या क्षेत्र के हिसाब से ये पाउडर छिड़के जाते हैं । 100 रोग मुक्त बीज चकत्तों के पालन के लिए लगभग 6-7 कि ग्रा विजेता/अंकुश की आवश्यकता होती है ।

रोटरी माउन्टेज का धूमन (फ्यूमिगेशन) द्वारा नि:संक्रमण : रोटरी माउन्टेजस को एक छोटे कमरे में 10 % फार्मलिन को एक बर्तन में गर्म करके 24 घंटे तक उसे वायुरोधी वातावरण में रखकर रोगाणुमुक्त करते हैं । उपरोक्त के अलावा रोगों की रोकथाम के लिए व्यक्तिगत स्वच्छता तथा कीटपालन स्वच्छता का भी विशेष ध्यान रखना चाहिए ।

व्यक्तिगत स्वच्छता : कीटपालन गृह में प्रवेश से पहले हाथों को भली-भांति साबुन तथा नि:संक्रमणकारी घोल से धोना चाहिए तथा साथ ही 5 % ब्लीचिंग पाउडर युक्त फुटमेट का प्रयोग करना चाहिए । शय्या की सफाई के पश्चात् कीड़ों को पत्ती देने से पहले भी हाथों को भली-भांति साफ कर लेना चाहिए ।

कीटपालन स्वच्छता **:**

1. बीमार/मृत कीड़ों को प्रतिदिन एक अलग बर्तन में निकाल कर उन्हें दूर जला कर या गाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए ।
2. शय्या में बची पत्तियों तथा टहनियों को एक वीनाइल शीट में इकट्ठा करके दूर ले जाकर जला देना अथवा कम्पोस्ट गड्ढे में डाल देना चाहिए ।
3. कीड़े जब ज्वरावस्था में हों तो उन पर चूने का पाउडर छिड़कना चाहिए ।
4. कीटपालन कक्ष के फर्श को 2 % ब्लीचिंग पाउडर से साफ करते रहना चाहिए ।
5. शहतूत के पत्तों को अलग कक्ष में रखना चाहिए ।

अमृत

उपचार पद्धति से रोगों का प्रबंधन **:**

यद्यपि रेशमकीट पालन में रोगों के नियंत्रण के लिए रोकथाम ही सबसे अच्छी पद्धति है तथापि इस संस्थान ने ग्रैसरी और फ्लैचरी जैसे रोगों के निदान के लिए उपचार के रूप में "अमृत" नामक उत्पाद बनाया है जिसका घोल पत्ती पर छिड़क कर कीड़ों को खिलाया जाता है । अध्ययनों के अनुसार पत्ती पर अमृत के छिड़काव से संक्रमित कीड़ों में 60-65 % तक ग्रैसरी व फ्लेचरी की संख्या में कमी पाई गई है । किसानों के स्तर पर किए गए अध्ययनों में भी इन परिणामों की पुष्टि हुई है । इस उत्पाद का वाणिज्यीकरण भी किया जा चुका है । इसके उपयोग की विधि से संबंधित विस्तृत जानकारी उत्पाद के पैकेटों पर अंकित है ।

ग**)** रेशमकीट की रोग प्रतिरोधी प्रजातियाँ विकसित करना **:**

काफी वर्षों से ऐसे प्रयास किए जा रहे हैं कि ऐसी अधिक उत्पादकता वाली रेशमकीट प्रजातियाँ विकसित की जाए जिनमें रोगों से लड़ने की प्रतिरोधक शक्ति अपेक्षाकृत अधिक हो । हालांकि इन प्रयासों में अधिक सफलता नहीं मिली है फिर भी चयन के दौरान ऐसी प्रजातियां पाई गई हैं जिनमें रोग प्रतिरोध की मात्रा काफी अधिक है । जैसे कि बहुप्रज प्रजातियों में "निस्तरी", 96 ई तथा बहुप्रज प्रजातियों में 61 एन एवं 5 एन आदि । इन प्रजातियों का उपयोग करके अधिक उत्पादकता वाली प्रजातियां विकसित करने का कार्य संस्थान में चल रहा है ।

उपरोक्त उपायों के साथ अच्छा कीटपालन प्रबंधन, शहतूत पत्ती की गुणवत्ता, स्थलावकाश तथा वातावरणीय नियंत्रण आदि पर उचित ध्यान देने की आवश्यकता है जिससे कि रेशम के कीड़े अच्छे स्वस्थ हों एवं उनमें रोगों से लड़ने की अच्छी क्षमता हो जिससे रोग कीड़ों में आए ही नहीं । उत्तम कीटपालन के लिए सामुदायिक चाकी पालन एक अच्छी अवधारणा है जिसके परिणामस्वरूप अच्छे एवं स्वस्थ कीड़े किसानों में 6-7 वें दिन वितरित किए जाते हैं । किसान इन्हें लगभग 15-16 दिन अच्छी देखरेख में पालता है एवं अच्छी पैदावार प्राप्त करता है ।

शहतूत रेशम उत्पादन में यंत्रीकरण - आवश्यकता एवं संभावनाएं

सतीश वर्मा, वैज्ञानिक-ई (अभियंता)
केन्द्रीय रेशम उत्पादन अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, मैसूर

1. प्रस्तावना

रेशम उत्पादन में शहतूत पत्तियों का उत्पादन और रेशमकीट पालन सम्मिलित हैं। राष्ट्र के कई भागों यथा कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, जम्मू व कश्मीर एवं पश्चिम बंगाल राज्यों में अनेक सदियों से रेशम उत्पादन प्रचलित है । हर साल भारत में 20,000 मीट्रिक टन कच्चा रेशम उत्पादित होता है जबकि हमारी वार्षिक मांग 35,000 मीट्रिक टन है।

आज भारत में रेशम उत्पादन उद्योग आयातित रेशम से कड़ी चुनौती का सामना कर रहा है, विशेषकर चीनी रेशम से जो कि न केवल गुणवत्ता में श्रेष्ठ है बल्कि कीमत में भी सस्ता है । अतः हमें देशी रेशम की गुणवत्ता में सुधार लाते हुए उत्पादन लागत को कम करना होगा।

रेशम उत्पादन में यंत्रीकरण क्यों ?

रेशम उत्पादन में यंत्रीकरण निम्नलिखित कारणों से आवश्यक है :

- भूमि और श्रमिकों की उत्पादकता को बढ़ाना ।
- शहतूत कृषि और रेशमकीट पालन के विभिन्न कार्यकलापों को समय पर संचालित करना ।
- कोसा उत्पादन के विभिन्न कार्यकलापों को अच्छी तरह से करना ।
- शहतूत एवं रेशमकीट फसलों के नुकसान को कम करना ।
- कई कार्यकलापों में कड़ी मेहनत को कम करना ।
- रेशम कोसों के उत्पादन की लागत को कम करना ।
- रेशम कोसों की गुणवत्ता में सुधार लाना।

2. शहतूत कृषि में यंत्रीकरण

रेशम उत्पादन में शहतूत कृषि बहुत महत्वपूर्ण है। अच्छी गुणवत्ता वाली शहतूत पत्तियों से अच्छे और रेशम समृद्ध कोसों का उत्पादन होता है । श्रमिकों की मजदूरी और निवेश जैसे उर्वरक तथा पानी की कीमत में वृद्धि होने के कारण हाल ही में शहूतत पत्तियों के उत्पादन की लागत बढ़ गई है । रेशम कोसे उत्पादन की लागत में लगभग 60-70% शहूतत पत्तियों के लिए होता है। शहतूत पत्ती उत्पादन में 65-70% व्यय अंतर संवर्धन और अन्य प्रचालन की श्रम मजदूरी में लग जाता है। रेशम कोसा उत्पादन की लागत को कम करने के लिए हमें पत्ती उत्पादन लागत को कम करना होगा । भूमि तैयार करने के लिए, कर्तन बनाने के लिए, अंतरासंवर्धन प्रचालन, रासायनिक छिड़काव और प्ररोह कटाई के लिए उपयुक्त यंत्रीकरण जैसे उपकरणों, उपस्करों और मशीनों को अपनाकर शहतूत पत्ती उत्पादन लागत को कम से कम 35-40% तक कम किया जा सकता है ।

क) नए शहतूत पौधारोपण के लिए भूमि तैयार करना

शहतूत एक बहुवर्षी फसल है । एक बार पौधा लगाए जाने पर 12-15 वर्षों तक पत्ता देता है। अतः शहतूत पौधारोपण से पहले भूमि को अच्छी तरह तैयार करना चाहिए । ट्रेक्टर प्रचालित अवमृदा यंत्र (सब सॉइलर) का मिट्टी के कठोर पटल को जोतने हेतु उपयोग किया जा सकता है। यह मृदा को 40-50 सें मी तक ढीला करता है । सब सॉइलर मृदा में वर्षाजल का संरक्षण करने में भी सहायक होता है । सब सॉइलर शहतूत बागानों के लिए भूमि तैयार करने में बहुत प्रभावी उपकरण है ।

नए शहतूत पौधारोपण के लिए ट्रेक्टर द्वारा प्रचालित मोल्ड बोर्ड अथवा डिस्क हल, कल्टीवेटर और हैरो का उपयोग करने पर किसान भूमि को जल्दी और कम लागत पर तैयार कर सकते हैं ।

चित्र 1 : शहतूत पौधरोपण के लिए माउल्ड बोर्ड और डिस्क हल का प्रचालन करते हुए भूमि तैयार करना

ख) शहतूत कलमें बनाना

शहतूत का प्रवर्धन कलमों के माध्यम से होता है । अधिकतर कृषक कलमें बनाने हेतु बिल हुक का उपयोग करते हैं । एक श्रमिक सामान्यत: एक दिन में 1500 से 2000 कलमें बनाता है। कें रे अ प्र सं, मैसूर द्वारा तैयार की गई शहतूत कर्तन मशीन से एक घंटे में 1400 से 1500 कलमें बनाई जा सकती हैं । मशीन कलमें बनाने में कड़ी मेहनत को कम करती है।

चित्र 2 : शहतूत **कलमें** *कर्तन यंत्र*

ग) शहतूत पौधरोपण एवं अंतराकृषि कार्य

शहतूत बागान में अंतराकृषि कार्य (weeding) करने में बहुत श्रम और समय लगता है । 3'x3' जैसे परंपरागत बागानों में मशीनों का उपयोग करना संभव नहीं होता और अंतराकृषि कार्य हाथ से किया जाता है । यह कार्य करने में अधिक व्यय और समय लग जाता है ।

कें रे अ प्र सं, मैसूर ने यंत्रीकत प्रचालन को सुसाध्य बनाने के लिए युग्मित पंक्ति (Paired row) और 3 एम जैसी बागान ज्यामितियों को विकसित किया । यंत्रीकृत कृषि से पत्ती उत्पादन में खर्च कम होता है और काम अधिक तेजी से होता है। शहतूत बागानों में अंतराकृषि कार्य के लिए पावर टिल्लर, पावर वीडर और ट्रैक्टर प्रचालित उपकरणों का उपयोग किया जा सकता है । युग्म पंक्ति और 3एम पौधरोपण कृषकों को बड़े शहतूत बागानों में खेती करने को आसान बनाता है ।

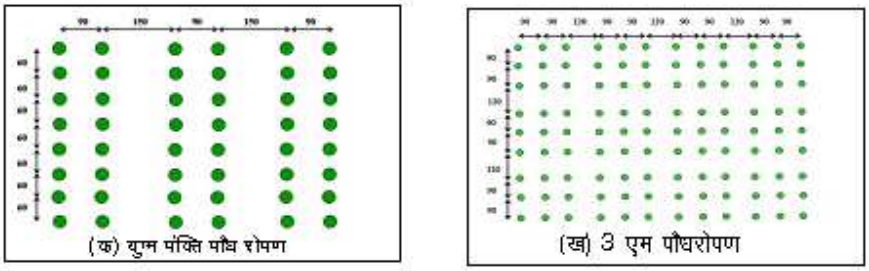

चित्र 3 : यंत्रीकृत अंतराकृषि कार्य के लिए शहतूत पौधरोपण विधियाँ

दक्षिण भारत के अनेक कृषकों ने युग्म पंक्ति पौधरोपण अपनाया है । इससे उन्हें शहतूत पत्ती के उत्पादन की लागत कम करने में सहायता मिली है । युग्म पंक्ति बागान में कृषक अतिरिक्त आय के लिए शहतूत के साथ अंतराफसल लगा सकते हैं । युग्म पंक्ति पौधरोपण में कृषकों को दोनों ट्रैक्टर और बैल हल का उपयोग करना पड़ता है । अंतराकृषि क्रियाओं में पंक्ति की लंबाई में पवर टिल्लर और ट्रैक्टर चालित कल्टिवेटर और पावर वीडर चला सकते हैं । लेकिन तिरछी जुताई के लिए पौधों के बीच का अंतराल कम होने के कारण बैल हल का उपयोग करना पड़ता है । इस समस्या को हल करने तथा शहतूत की

शत-प्रतिशत यंत्रीकृत कृषि के लिए कें रे अ प्र सं, मैसूर ने 3 एम जैसी नई बागान ज्यामिति विकसित की । इस नई पौधरोपण ज्यामिति से विविध प्रचालनों के लिए 100% यंत्रीकरण किया जा सकता है । पंक्तियों की लंबाई या तिरछे में ट्रैक्टर चलाया जा सकता है । 3एम पौधरोपण में काम तेजी से और कम लागत में किया जाता है ।

चित्र 4 : शहतूत बागानों में यंत्रीकृत अंतराकृषि कार्य

सारणी 1 : अंतराकृषि क्रियाओं की लागत

कार्य की विधि	अपेक्षित समय/मानवशक्ति	कार्य की लागत, रु/हे
हाथ से निराई गुड़ाई	42- श्रम दिवस	3,360
बैलों से जुताई	80 घंटे/हे बैल जुताई + 8 श्रम दिवस/हे	2,560
युग्म पंक्ति पौधरोपण में पावर टिल्लर चालित निराई	21 घंटे/हे टिल्लर जुताई + 40 घंटे/हे बैल जुताई	2,680
युग्म पंक्ति पौधरोपण में ट्रैक्टर द्वारा जुताई	5 घंटे/हे ट्रैक्टर + 40 घंटे/हे	2,250
3 एम पौधरोपण में ट्रैक्टर द्वारा जुताई	6.6 घंटे/हे	1,650

घ) शहतूत बागानों में रसायनों का छिड़काव

चित्र 5 : शहतूत बागानों में रसायनिक अनुप्रयोग के लिए विभिन्न उपस्कर एवं मशीनें

शहतूत पौधों पर अनेक कीटों एवं रोगों का प्रकोप होता है जिससे फसल नष्ट होती है और पत्ती गुणवत्ता भी घट जाती है । स्वस्थ शहतूत पत्तियों के उत्पादन के लिए रोगों और कीटों का समय पर नियंत्रण करना बहुत आवश्यक है । कई कृषक पत्ती गुणवत्ता बढ़ाने हेतु वृद्धि वर्धकों का उपयोग करते हैं । सामान्यत: कृषक रासायनिक अनुप्रयोग के लिए हस्तचालित या यंत्रीकृत नैपसैक स्प्रेयरों का उपयोग करते हैं । किसान स्वचालित कें रे अ प्र सं स्प्रेयर स्प्रेयर टी एन ए यू पावर टिल्लर पर लगे स्प्रेयर और एस पी ट्रैक्टर पर लगे स्प्रेयर की सहायता से कम समय में एक समान रूप से रसायन छिड़क सकते हैं ।

सारणी 2: शहतूत बागानों में रसायन अनुप्रयोग की लागत

स्प्रेयर	1.0 हे में छिड़कने के लिए समय	छिड़कने की लागत/हे
नैपसेक - हस्तचालित	12.5 घंटे	रु. 225
नैपसेक - पवर चालित	4.0 घंटे	रु. 175
टीएनएयू पॉवर टिल्लर पर लगा स्प्रेयर	5.0 घंटे	रु. 600
केंरेअप्रसं - सेल्फ प्रोपेल्ड बूम स्प्रेयर	2.2 घंटे	रु. 150
एएसपीईई ट्रैक्टर पर लगा स्प्रेयर	0.6 घंटे	रु. 170

ङ.) शहतूत के शूटों की कटाई : आजकल दक्षिण भारत में शूट कीटपालन बहुत लोकप्रिय हो गया है । इसमें श्रम, समय और लागत बचती है। यह व्यापक रेशम कीटपालन को आसान बनाता है । भारतीय कृषक शहतूत शूटों को काटने हेतु परंपरागत हंसिया, क्रकचित हंसिया, एकल क्रिया छंटाई आरी का उपयोग करते हैं । कें रे अ प्र सं, मैसूर ने शहतूत शूट काटने हेतु नैपसैक प्रकार के झाड़ी कर्तकों का परीक्षण किया । एक घंटे में लगभग 600-800 कि ग्रा शूट काट सकते हैं । इस संस्थान ने माध्यम स्तर के और बड़े फार्मों के लिए विद्युत टिल्लर चालित शहतूत प्ररोह कर्तित्र (हार्वेस्टर) विकसित किया है । यह युग्म पंक्ति रोपण में अच्छी तरह काम करता है और इससे 1000-1200 कि ग्रा शूट/घंटे कटाई की जा सकती है ।

चित्र 6 : शहतूत प्ररोह कटाई उपस्कर

3. रेशमकीट पालन में यंत्रीकरण : रेशमकीट पालन में बहुत श्रम लगता है । कीटपालन व्यय का करीब 40% कीटपालन गृह की सफाई और विसंक्रमण, चाकी कीटों के लिए शहतूत पत्तियों को काटने, उत्तरावस्था के कीटों को शूट देने, रेशमकीटों को उठाकर चंद्रिका पर चढ़ाने, कोसा एकत्रित करने, कोसा फ्लौस हटाने और कोसों को छांटने के लिए मजदूरी पर जाता है। कीटपालन गृहों का विसंक्रमण, चॉकी रेशमकीटों के लिए शहतूत पत्तियों को काटना, रेशमकीटों को उठाना, कोसा एकत्रित करना, कोसा फ्लोस हटाना आदि जैसे कीटपालन कार्यों के लिए समुचित यंत्रों और उपकरणों का उपयोग करने पर श्रम समस्या दूर करने तथा रेशम कोसों की उत्पादन लागत कम करने में सहायक होगा ।

क) कीटपालन गृह विसंक्रमण : अच्छी कोसा फसल के लिए कीटपालन गृहों को पूरी तरह विसंक्रमित किया जाना चाहिए। कृषक सामान्यतया विसंक्रमण के लिए हस्तचालित स्प्रेयरों का प्रयोग करते हैं । विसंक्रमित करने के लिए पावर फुहारक (स्प्रेयर) बहुत प्रभावी और तेज हैं । तेजी से और प्रभावी ढंग से विसंक्रमण होने के कारण विद्युत और इंजन चालित स्प्रेयर किसानों में बहुत लोकप्रिय हो गए हैं । कीटपलन गृहों और कीटपालन उपस्करों आदि के विसंक्रमण में आग का प्रयोग सस्ता और पारि-अनुकूल है । कें रे अ प्र सं, मैसूर ने एक फ्लेम गन विकसित किया है जो कीटपालन गृह, कीटपालन स्टैण्ड और चंद्रिकाओं को विसंक्रमित करने का समय और लागत प्रभावी उपकरण है ।

चित्र 7 : कीटपालन गृह विसंक्रमण उपस्कर

चित्र 8 : चॉकी केंद्रों के लिए शहतूत पत्ती कर्तक

ख) शिशु रेशमकीटों के लिए पत्ती कर्तन : रेशमकीटों को प्रारंभिक अवस्था में कोमल पत्तियाँ काटकर खिलाई जाती हैं । पत्तियों को हाथ से तोड़ा जाता है जो छोटे पैमाने में कीटपालन करने के लिए संभव है, परंतु बड़े पैमाने के कीटपालन के लिए पत्तियों को कम समय में काटने हेतु कुछ यांत्रिक सहायता की आवश्यकता होती है । कें रे अ प्र सं की पत्ती काटने वाली मशीन एक घंटे में 225-250 कि ग्रा शहतूत पत्तों को विभिन्न आकार में रेशमकीट की विभिन्न अवस्थाओं के लिए काट सकती है। पत्ती काटने वाली मशीन चॉकी कीटपालन केंद्रों के लिए बहुत उपयोगी है जहाँ बड़े पैमाने पर चॉकी कीटपालन होता है । यह मशीन विद्युत चालित है लेकिन बिजली बंद होने पर हाथ से भी चलाई जा सकती है ।

ग) कोसों से फ्लौस हटाना : कोसों की बाहरी परत पर धागाकरण के अयोग्य रेशम फ्लौस होता है और धागाकरण से पहले इसे हटाना आवश्यक होता है। सी एस आर टी आई, मैसूर ने विभिन्न प्रकार के डीफ्लौसर तैयार किए हैं । छोटे कीटपालक हस्तचालित डीफ्लौसर का प्रयोग कर सकते हैं जबकि मध्यम और बड़े किसानों के लिए मोटरयुक्त डीफ्लौसर उपलब्ध हैं । डीफ्लौसर की सहायता से कोसों से तेजी से फ्लौस निकाल सकते हैं और श्रम प्रभार भी बचा सकते हैं । डीफ्लौसर से कोसों की सफाई भी होती है । फ्लौस निकाले हुए कोसों का बाजार में अधिक दाम मिलता है ।

चित्र 9 : रेशमकीट कोसों से फ्लैस हटाने की मशीन

4. शहतूत रेशम उत्पादन में यंत्रीकरण से आर्थिक लाभ : सारणी 3 व 4 में दिए अनुसार यंत्रीकरण से कार्य की लागत कम करने में तथा श्रमशक्ति के अभाव से उभरने में भी मदद मिलती है ।

सारणी 3 : शहतूत कृषि में यंत्रीकरण का प्रभाव

क्रमांक	कार्यकलाप	कार्य की लागत		यंत्रीकरण से लाभ (क/ख) x 100
		हाथ से/बैल से (क)	यंत्र (ख)	
1.	भूमि तैयार करना (प्रति हे)	3500	750	466
2.	कलमें बनाना (प्रति हजार)	80	15	533
3.	अंतराकृषि कार्य (प्रति हे)	2000	1200	167
4.	रसायन अनुप्रयोग (प्रति हे)	400	100	400
5.	प्ररोह काटना (प्रति में ट)	500	125	400

सारणी 4 : रेशमकीट पालन में यंत्रीकरण का प्रभाव

क्रमांक	कार्यकलाप	कार्य की लागत		यंत्रीकरण से लाभ (क/ख) x 100
		हाथ से (क)	मशीन से (ख)	
1.	विसंक्रमण	250	100	250
2.	पत्ती काटना (5000 रो मु बी च वाले बैच के लिए प्रतिदिन)	300	100	300
3.	रेशमकीटों को उठाना (प्रति 100 रो मु बी च)	500	200	250
4.	कोसा फ्लौस हटाना (प्रति 100 कि ग्रा)	300	50	600

5. निष्कर्ष : यंत्रीकरण से भूमि तथा श्रमिकों की उत्पादकता को सुधारने में तथा रेशम कोसों की उत्पादन लागत कम करने में बहुत सहायता हुई है । इससे शहतूत कृषि एवं रेशमकीट पालन में लगने वाली कड़ी मेहनत को कम करने में मदद मिलती है। पिछले कुछ सालों से यंत्रीकरण ने भारतीय रेशम उत्पादन को नई दृष्टि एवं अवसर प्रदान किए हैं । आज अधिक से अधिक कृषक यंत्रीकरण को अपना रहे हैं ।

रेशम उत्पादन प्रशिक्षण एवं विस्तारण प्रबंधन

एस डी शर्मा एवं जी एस विंध्या
केंद्रीय रेशम उत्पादन अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, मैसूर

प्रस्तावना **:**

रेशम उत्पादन एक अद्वितीय उद्यम है । शहतूत उगाना और रेशमकीट पालन इसके उत्पादन पक्ष की दो जैविक प्रकियाएँ हैं । ये दोनों कार्यकलाप फार्म पर किए जाते हैं । रेशम उत्पादन उद्यम के अन्य घटकों को औद्योगिक कार्यकलापों के रूप में समझा जा सकता है ।

इस दृष्टि से यह देखा जा सकता है कि इस उद्योग में किसानों की महत्वपूर्ण भूमिका है । यदि किसान तकनीकी और प्रबंधकीय रूप से सक्षम है तो उत्पादित रेशम की मात्रा और गुणवत्ता में सुधार होगा । रेशम उत्पादन विस्तारण का मुख्य कार्य संबंधित किसानों की उत्पादन क्षमता में सुधार लाने में सहायता करना है ।

विस्तारण सेवाओं की पृष्ठभूमि :

मूल रूप से विस्तारण, परिवर्तन का एक माध्यम है । यह लोगों के साथ मिलकर कार्य करता है। इसका मुख्य उद्देश्य लोगों की उत्पादन करने की क्षमता में सुधार लाने में सहायता करना है । विस्तारण सहायता विशेष स्थिति के अनुसार वैज्ञानिक अथवा प्रौद्योगिक सुधार के रूप में मिलती है । विस्तारण कार्यों के अंतर्गत फार्म में कार्य करने वालों के परिवारों तक पहुँचना, उनके व्यवसाय में संभाव्य सुधार की ओर उनका ध्यान आकर्षित करना और यदि स्वीकार्य है तो इन सुधारों पर विचार कर उन्हें अपनाने हेतु इन लोगों को प्रोत्साहित करना होता है ।

अधिकतर देशों में विस्तारण एक अनौपचारिक शिक्षा प्रणाली है जिसमें फार्म के परिवारों और उनके व्यवसाय पर ध्यान दिया जाता है । अक्सर इसे इस प्रकार परिभाषित किया जाता है : विस्तारण एक ऐसी प्रणाली है जिसमें अनौपचारिक शैक्षणिक क्रियाविधियों का उपयोग करते हुए किसानों, उनके परिवारों और समुदायों के साथ कार्य किया जाता है ताकि उनकी आवश्यकताओं और इच्छाओं के अनुसार उन्हें उपयोगी और व्यावहारिक जानकारी दी जा सके जिससे कि वे अपने जीवन में संतोषजनक सुधार ला सकें ।

विस्तारण निष्पादन को प्रभावित करने वाले मामले :

सामान्यतया विस्तारण प्रणाली ग्रामीण समुदाय जो ग्रामीण सामाजिक योजना कहलाता है, के साथ कार्य करता है । किसान जिनके साथ विस्तारण सेवा संपर्क स्थापित करती है इस सामाजिक प्रणाली के भाग हैं या तो परिवार के एक सदस्य के रूप में अथवा अन्य सामाजिक समूहों की तरह । अत: ग्रामीण समुदाय के अंदर उनके परस्पर संबंधों के अनुसार उनका व्यवहार प्रभावित होता है । इसी प्रकार प्रत्येक समुदाय की अपनी सांस्कृतिक विशेषताएँ होती हैं जैसे आचार, परम्पराएँ, मानदंड आदि जिसके अनुसार व्यक्ति, समूह और समुदाय का व्यवहार नियंत्रित होता है ।

विस्तारण प्रणाली अपने कार्यों में दो मूल सामाजिक प्रक्रियाओं का विस्तार रूप से प्रयोग करती है । एक तो संचार प्रतिमान जो प्रत्येक समुदाय में विद्यमान होता है और दूसरा, अभिनवकरण को अपनाने व प्रसारण की प्रक्रिया है । विस्तारण शैक्षिक क्रियाविधियों पर निर्भर करता है । सीखना सभी जीवों की एक सहज क्षमता है । मनुष्य अपने संपूर्ण जीवन में सहज रूप से या सोच समझकर सीखता रहता है । कुछ भी बाहर से थोप देने पर कम समय तक बना रहता है । किसानों की समझ और क्षमता में स्थायी सुधार लाने के लिए सीखने-सिखाने की प्रक्रिया अथवा दूसरे शब्दों में शैक्षिक क्रियाविधि को ही उत्तम माध्यम माना गया है ।

आगे, विस्तारण वयस्क किसानों से संबंध रखता है । वयस्कों का सीखने का तरीका युवाओं से अलग होता है । अत: विस्तारण प्रणाली को अपनी शैक्षणिक क्रियाविधि में उपयुक्त समायोजना करना चाहिए ताकि वयस्क व्यक्तियों और समूहों के साथ ठीक तरह से कार्य किया जा सके । यह ध्यान देना चाहिए कि विस्तारण कार्यकलापों में वयस्क स्वैच्छिक रूप से भाग लेते हैं । इसके अलावा लोकतांत्रिक स्थिति में किसान किसी भी संस्तुत उपाय को अपनाने अथवा न अपनाने के लिए स्वतंत्र होते हैं ।

विस्तारण प्रणाली के घटक **:**

विस्तारण प्रणाली के सभी नमूनों के पॉच मूल घटक होते हैं । सम्पूर्ण प्रणाली को प्रभावित करने के लिए प्रत्येक घटक अपने आप में महत्वपूर्ण है ।

उपयोगी जानकारी :

यदि देने के लिए पर्याप्त जानकारी नहीं है तो किसी भी विस्तारण सेवा की आवश्यकता नहीं होगी । अत: किसी भी विस्तारण कार्य में प्रथम पूर्वापेक्षा है - व्यवहारिक उपयोगिता की नई जानकारी । यदि इस तरह की पर्याप्त उपयोगी जानकारी उपलब्ध है तभी विस्तारण प्रयास पर विचार करने की आवश्यकता पड़ती है । साधारणतया, नई जानकारी उपलब्ध कराना अनुसंधान प्रणाली का कार्य है । इसके अतिरिक्त, वास्तविक जीवन में साधन सम्पन्न किसानों से भी उपयोगी विचार आते हैं । ऐसी सभी जानकारियों को एकत्रित और सुव्यवस्थित कर जॉचने के बाद मान्यता प्राप्त होने पर विस्तारण में संस्तुत उपाय बन जाते हैं ।

नई जानकारी के जरूरतमंद लोग **:**

फार्म समुदायों पर चर्चा करते हुए, उनके उत्पादन और आय को सुधारने की उनकी सामान्य इच्छा को हम पहचान सकते है । ऐसा कोई भी किसान नहीं होगा जो अपनी आय को सुधारना नहीं चाहेगा । किसानों के हमेशा समस्याएँ होती हैं आवश्यकताएँ और अवसर भी होते हैं पर उन्हें उपयोगी नई जानकारी के लिए मार्ग नहीं मिलता । अत: यदि अच्छे विचार हैं, तो लोग उन्हें कभी न कभी उपयोग करेंगे ही ।

विस्तारण अभिकरण **:**

विस्तारण अभिकरण का मुख्य कार्य उपयोगी जानकारी के स्रोत को उन किसानों के साथ जोड़ना है जिन्हें ऐसी जानकारी की आवश्यकता है । यह कार्य केवल सूचना का संचार अथवा प्रौद्योगिकी स्थानांतरण नहीं है, जैसा कि कई बार समझा जाता है । यह तो सम्भाव्य उपयोगकर्ताओं को उपयोगी जानकारी देना और उन्हें उसका उपयोग करने हेतु प्रेरित करना है । यह कार्य शैक्षिक प्रकृति का है। इसके अलावा, विस्तारण एक दुतरफा प्रणाली है जो न केवल किसानों को नई जानकारी देती है, पर अनुसंधान अन्वेषण के लिए उनकी समस्याओं को भी हमारे पास लाती है । आज पूरी दुनिया में विस्तारण ग्रामीण विकास की एक महत्वपूर्ण प्रणाली है ।

विस्तारण विधियों को व्यवस्थित करना **:**

किसानों के साथ शैक्षिक संबंध विकसित करने के लिए विस्तारण प्रणाली एक स्थापित और विशिष्ट संचार मार्ग को जिसे विस्तारण विधि कहते हैं, काम में लाती है । कई तरह की विस्तारण विधियाँ हैं । सामान्यतया उन्हें व्यक्तिगत संपर्क विधियों, समूह संपर्क विधियों और व्यापक संपर्क विधियों में वर्गीकृत किया जाता है । चूंकि विस्तारण सेवा अनपढ़ अथवा कम पढ़े किसानों के साथ काम करती है, इसलिए विस्तारण विधियाँ विभिन्न प्रकार की अध्यापन साधनों का उपयोग करती हैं । क्षेत्र विस्तारण कर्मचारियों को न केवल विस्तारण शिक्षा के सिद्धान्तों और क्रियाविधियों में प्रशिक्षित करना होता है बल्कि उन्हें विस्तारण अध्यापन विधियों और साधनों के चयन और उनके प्रभावी प्रयोग की भी शिक्षा देनी होती है ।

विस्तारण सहयोगी सेवाएँ :

विस्तारण सेवाओं का मूल प्रयास किसानों के विद्यमान उत्पादन उपायों में सुधार लाना है । इसका मतलब है खेती में (फार्मिंग) परिवर्तन लाना । कुछ परिवर्तन ऐसे हैं कि केवल किए जाने वाले तरीके में परिवर्तन लाया जाता है तो कुछ परिवर्तन नए निवेश के रूप में किए जाते हैं जिसकी अक्सर खरीद की जाती है । इन दोनों प्रकार के परिवर्तनों से फार्म उत्पादन में वृद्धि होगी । अत: विस्तारण कार्य को बनाए रखने के लिए कुछ नई अवसंरचना सुविधाएँ होनी चाहिए जिसमें निवेश आपूर्ति अभिकरण, विपणन सुविधाएँ, संसाधन व्यवस्थाएँ और तकनीकी सेवाएँ सम्मिलित हों ।

यह पाँच घटक एक प्रभावशाली विस्तारण प्रणाली बनाते हैं । यह रेशम उत्पादन विस्तारण के लिए भी लागू होता है ।

विस्तारण कार्य में परिचालन विचार **:**

एक विशेष क्षेत्र में एक विशेष उद्यम जैसे रेशम उत्पादन में विस्तारण कार्य करने के लिए कई प्राथमिक विचार ध्यान में रखने पड़ते हैं । उनका वर्णन नीचे प्रस्तुत है :

एक विशिष्ट विस्तारण एकक में तीन कर्मचारी घटक हैं :

1. विस्तारण क्षेत्र कर्मचारी
2. विषय विशेषज्ञ
3. विस्तारण प्रबंधक
4. किसान

(1) विस्तारण क्षेत्र कर्मचारी **:**

उन्हें निम्नलिखित पहलुओं से परिचित होना चाहिए :

- मृदा, जलवायु और फार्म उद्यम सहित स्थानीय कृषि स्थिति ।
- स्थानीय कृषि उपाय ।
- रेशम उत्पादन के संवर्धन के लिए स्थिति या संभावनाएँ और यदि कोई पूर्व विस्तारण अनुभव है ।
- स्थानीय समुदाय, उसकी विशिष्टताएँ, प्रदर्शन, अभिमुखीकरण पूर्वानुकूलता और निषेध ।
- स्थानीय नेतृत्व, संस्थाएँ और सुविधा मार्ग ।
- अन्य परिवर्तन अभिकरण, विकास कार्यक्रम जो रेशम उत्पादन विस्तारण कार्य से संबंधित हो ।
-

(2) विषय विशेषज्ञ **:**

जब उद्यम बढ़ता है और नए क्षेत्रों को शामिल करता है तब इनकी भूमिका महत्वपूर्ण होती है ।

विषय विशेषज्ञों को निम्नलिखित की आवश्यकता है :

1. स्थानीय परिस्थितियों की जानकारी, विशेषकर तकनीकी क्षेत्र में ।
2. अनुसंधान अभिकरणों से संपर्क ।
3. स्थानीय विषयों को केंद्रित करते हुए विस्तारण साहित्य तैयार करने की क्षमता ।
4. क्षेत्र विस्तारण कर्मचारियों और फार्म नेताओं को प्रशिक्षित करने और उन्हें दिशा निर्देश देने की क्षमता ।
5. परीक्षण और क्षेत्र अन्वेषण संचालित करने की क्षमता ।

(3) विस्तारण प्रबंधक **:**

ये विस्तारण टीम के कप्तान है । इन्हें :

1. फार्म नेताओं और संस्थाओं से संपर्क होना चाहिए ।
2. क्षेत्र विस्तारण कर्मचारी और विषय विशेषज्ञों की क्षमता की जानकारी होनी चाहिए ।
3. अन्य संबंधित संगठनों के साथ अच्छे संबंध होने चाहिए ।
4. प्रशासनिक संसाधनों की जानकारी ।
5. अनुसंधान प्रणाली से संबंध ।
6. निवेशों और विपणन सुविधाओं की जानकारी ।

रेशम उत्पादन विस्तारण का प्रबंधन

दो विशिष्ट स्थितियों में रेशम उत्पादन में सुव्यवस्थित विस्तारण प्रयासों की आवश्यकता होती है । एक जब किसी क्षेत्र में रेशम उत्पादन एक नया उद्यम हो । यहाँ किसानों को पूरे उद्यम के बारे में शिक्षित करना और दिशानिर्देश देना होगा और प्रत्येक महत्वपूर्ण प्रक्रिया पर ध्यान देना होगा । ऐसा देखा गया है कि रेशम उत्पादन को अपनाने की पहली अवस्था में दूसरों की अपेक्षा ये किसान प्रौद्योगिकी के कुछ पहलुओं को बेहतर रूप से जान लेते हैं । विस्तारण कर्मचारी को इस अवस्था में बहुत सतर्क रहना चाहिए और जिन बातों में किसान चूक जाते हैं उन सब बिन्दुओं को सुव्यवस्थित रूप से किसानों को समझाना चाहिए ताकि बहुत जल्द पूरी दक्षता के साथ किसान रेशम उत्पादन को कर सकें ।

दूसरी स्थिति यह है कि जब रेशम उत्पादन पहले से ही स्थापित हो । साधारणतया ऐसी स्थितियों में कुछ समय बाद उत्पादकता एक स्तर के बाद ठहर सी जाती है । यहाँ विस्तारण कर्मचारी को ध्यान देना चाहिए और रेशम उत्पादन प्रौद्योगिकी के उन पहलुओं का पता लगाना चाहिए जिन्हें किसानों ने संतोषजनक रूप से अपनाया हो । फिर कर्मचारियों को "अक्षम रूप से किए गए प्रौद्योगिकी पहलुओं" को पहचानना चाहिए । इसे "नैदानिक मार्ग" अथवा "समस्या की पहचान" कहते हैं । फिर इन कमजोर मदों पर अधिक ध्यान केंद्रित करना चाहिए । अत: विस्तारण प्रणाली को यह पहचानना चाहिए कि रेशम उत्पादन विकास के लिए दो विभिन्न गुणात्मक स्थितियाँ हैं ।

रेशम उत्पादन एक कृषि उद्यम है जहाँ महिलाओं की एक महत्वपूर्ण भूमिका है, अत: यह आवश्यक है कि रेशम उत्पादन विस्तार प्रणाली उन्हें विशेष लक्ष्य समूह के रूप में पहचाने और उनकी तकनीकी आवश्यकताओं को समझें । रेशम उत्पादन विस्तारण प्रबंधकों को क्षेत्र विस्तार कर्मचारियों की सफलताओं और विफलताओं को अन्य सदस्यों के साथ बाँटने हेतु उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए। विस्तारण प्रणाली के प्रभावों को सुधारने में अनुभवों से सीखना एक आलोचनात्मक निवेश है ।

केंद्रीय रेशम उत्पादन अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, मैसूर द्वारा चलाये जाने वाले प्रशिक्षण एवं विस्तारण कार्यक्रम

प्रशिक्षण कार्यक्रम **:**

केंद्रीय रेशम उत्पादन अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, मैसूर की स्थापना 1961 में चन्नपट्टणा में सर्वप्रथम एक प्रशिक्षण स्कूल के रूप में की गई थी जिसको रेशम उद्योग को अत्यावश्यक अनुसंधान एवं विकास सहयोग हेतु 1963 में मैसूर में स्थानांतरित कर दिया गया । आज यह संस्थान कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु, केरल, महाराष्ट्र एवं मध्यप्रदेश राज्य के शहतूत रेशम उद्योग के क्षेत्र में अनुसंधान, विकास एवं प्रशिक्षण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा कर रहा है ।

संस्थान द्वारा चलाए जाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रम **:**

संस्थान द्वारा अनेक परियोजनाओं के तहत कई विषयों पर प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाते ळें जिनमें निम्न कार्यक्रम प्रमुख हैं :

क**)** एकीकृत कुशलता विकास योजना **:**

यह केंद्र सरकार की एक अति महत्वपूर्ण योजना है जिसके अंतर्गत बेरोजगार युवकों एवं उद्यमियों के लिए महत्वपूर्ण विषयों पर 15 दिन का सघन प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है एवं प्रशिक्षणार्थियों के कौशल विकास पर विशेष ध्यान दिया जाता है । इस योजना में प्रशिक्षणार्थियों को आने जाने का किराया, भोजन एवं आवास व्यवस्था निशुल्क प्रदान की जाती है । साथ ही प्रति दिन के हिसाब से 50/- रुपये का अतिरिक्त भुगतान भी किया जाता है । अब तक इस योजना के अंतर्गत 186 प्रशिक्षणार्थी लाभान्वित हो चुके हैं । इस कार्यक्रम में निम्नलिखित विषयों पर प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है । इसकी अवधि 15 दिन है ।

1. वाणिज्यिक चॉकी कीटपालन
2. शहतूत कृषि एवं इसका बीज प्रगुणन
3. गुणवत्तायुक्त द्विप्रज कोसा उत्पादन
4. कोसा हस्तशिल्प

ख) केंद्रीय क्षेत्र योजना (सी एस एस) **2109 :** इस योजना के अंतर्गत दो तरह के प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाते हैं ।

1. कर्मचारियों/अधिकारियों के लिए प्रबंधन विकास कार्यक्रम - इस कार्यक्रम के अंतर्गत निम्नलिखित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं :

- पदधारियों के लिए पुनश्चर्या पाठ्यक्रम - 5 दिन
- तकनीकी कर्मचारियों के लिए चॉकी कीटपालन - 8 दिन
- मृदा विश्लेषण - 4 दिन
- एकीकृत पीड़क एवं रोग प्रबंधन - 5 दिन
- रेशम उत्पादन में यांत्रिकीकरण एवं उपस्करों का रख-रखाव - 10 दिन
- वयस्क रेशम कीटपालन - 10 दिन
- जैविक कृषि - 5 दिन
- विस्तारण प्रबंधन - 5 दिन

इस कार्यक्रम में प्रशिक्षणार्थियों को आने जाने का किराया, भोजन एवं आवास व्यवस्था निशुल्क प्रदान की जाती है । इस वर्ष अब तक इस योजना के तहत 150 प्रशिक्षणार्थी लाभान्वित हो चुके हैं ।

2. किसानों के लिए प्रौद्योगिकी उन्नयन कार्यक्रम - इस कार्यक्रम के अंतर्गत निम्नलिखित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं :

- कृषकों के लिए चॉकी कीटपालन - 8 दिन
- कृषकों के लिए वयस्क कीटपालन - 10 दिन
- शहतूत कृषि एवं जैविक कृषि - 5 दिन
- एकीकृत पीड़क एवं रोग प्रबंधन - 5 दिन
- रेशम उत्पादन में यांत्रिकीकरण एवं उपस्करों का रख-रखाव - 4 दिन
- जैव नियंत्रण कारकों का उत्पादन - 5 दिन

उक्त योजना में भी प्रशिक्षणार्थियों को आने जाने का किराया, भोजन एवं आवास व्यवस्था निशुल्क प्रदान की जाती है । इस वर्ष अब तक इस योजना के अंतर्गत 400 प्रशिक्षणार्थी लाभान्वित हो चुके हैं ।

उपरोक्त निशुल्क प्रशिक्षण कार्यक्रमों के अतिरिक्त एक 35 दिवसीय गहन द्विप्रज प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं कुछ अन्य कार्यक्रम अनुरोध पर भी आयोजित किए जाते हैं ।

संस्थान में काफी संख्या में विभिन्न विषयों के स्नातकोत्तर छात्र, उनके पाठ्यक्रमों के अनुरूप प्रोजेक्ट कार्य करने तथा शोधग्रंथ तैयार करने आते हैं । जिसके लिए अनेक विषयों में विशेषज्ञ वैज्ञानिक यहां पर उपलब्ध हैं ।

यहाँ पर प्रशिक्षण कार्यक्रमों की गुणवत्ता बनाई रखी जाती है तथा इसके लिए संस्थान के प्रशिक्षण विभाग को गुणवत्ता प्रबंध प्रणाली के लिए अंतर्राष्ट्रीय मानकीकरण संगठन 9001:2008 प्रमाण-पत्र प्राप्त हुआ है । इस तरह रेशम उत्पादन में प्रशिक्षण प्रदान करने में अपनाए सभी व्यवस्थित प्रयोसों और पद्धतियों के लिए पूरी दुनिया में एक अत्युत्तम संस्थान की श्रेणी में आना जाता है । पिछले एक दशक में 21000 से भी अधिक लोगों को यहाँ पर प्रशिक्षण दिया जा चुका है ।